



राजभाषा मंजूषा



अंक 24 वर्ष 2021

अद्वार्षिक



भारतीय संस्कृति : एक अप्रतिम धरोहर

स्वभाषा ज्ञान

स्वभाषा ज्ञान है पूर्ण सम्मान
यही है प्रगति यही उत्थान
स्वर व्यंजन की श्रृंखला मिलकर
अग्रतम भाषा को उपजाएं
ब्रह्मांड के हर संभव छोर तक
विजय नाद ही बजता जाए
आप और हम जिज्ञासु बनकर
प्रगति मार्ग और उन्नत बनाएं

—उपासना शर्मा

अनुक्रमणिका



संपादन परामर्श मंडल

परेश रावल

दिनेश खन्ना

प्रधान संपादक
ओम प्रकाश सागर

संपादक
चेतना वशिष्ठ

संपादन सहयोग
उपासना शर्मा

कार्यालय सहयोग
भूपाल सिंह

आकल्पन एवं कला पक्ष
चेतना वशिष्ठ, उपासना शर्मा

आरेख
चेतना वशिष्ठ

टाईप सैट डिज़ाईन एवं छपाई
सेंसर एडवरटाईजिंग प्रा. लि.

प्रकाशक
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

संपादक कार्यालय

राजभाषा विभाग, बहावलपुर हाउस,
भगवानदास रोड,
नई दिल्ली-110001

ई-मेल :

rajbhasha.nsd@gmail.com



1. 12 'प्र'से किया जा सकता है
राजभाषा हिन्दी का समुचित विकास — डॉ. सुमीत जैरथ
 2. आदिम युग संस्कृति के भीतर
से उभरता रंगमंच — प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर
 3. साक्षात्कार—म्यूज़ियम की यात्रा
घर से शुरू होती है — सुनंदा वर्मा
 4. हिन्दी भाषा और उसका स्वरूप —
प्रदीप कुमार अग्रवाल
 5. असमियां संस्कृति के विभिन्न
नाट्य रूप — पराग सर्माह
 6. नृत्य कला : भारतीय संस्कृति
का अभिन्न अंश — गोविन्द सिंह यादव
 7. भारतीय संस्कृति के
विविध संदर्भ — मुकेश मिश्रा
 8. संघर्ष संस्कृति और संगीत के
प्रतिरूप : उस्ताद अलाउद्दीन खाँ — श्याम रस्तोगी
 9. उत्तराखण्ड के न्यायप्रिय देवता — दीपि अग्रवाल
 10. भारतीय विवाह संस्कार — नीरा नारायण
- ### कहानी
1. मां के नाम चिट्ठी — सौमिता कुंडु
- ### काव्य संकलन
1. शूल की चुभन — सुरेश शर्मा
 2. सांवले सलोने श्याम — उपासना शर्मा
 3. मैं समझ गई — मनोज कुमार



4. शिक्षा — विजय सिंह
5. पानी — अर्पिता
6. अनभिज्ञ यादें — कविता मिश्रा
7. हिन्दी की अभिलाषा — निधि शर्मा
8. माझी — लोकेश कुमार
9. अनुभूति — नितिन कुमार

चित्र अभिव्यक्ति

1. मां का आंचल — सुमन वैद्य
2. मां — ज्योत्सना
3. अकेली नारी — सिकंदर कुमार
4. सपनों की गोद — ऋषिकेश कुमार

चित्र बोलते हैं

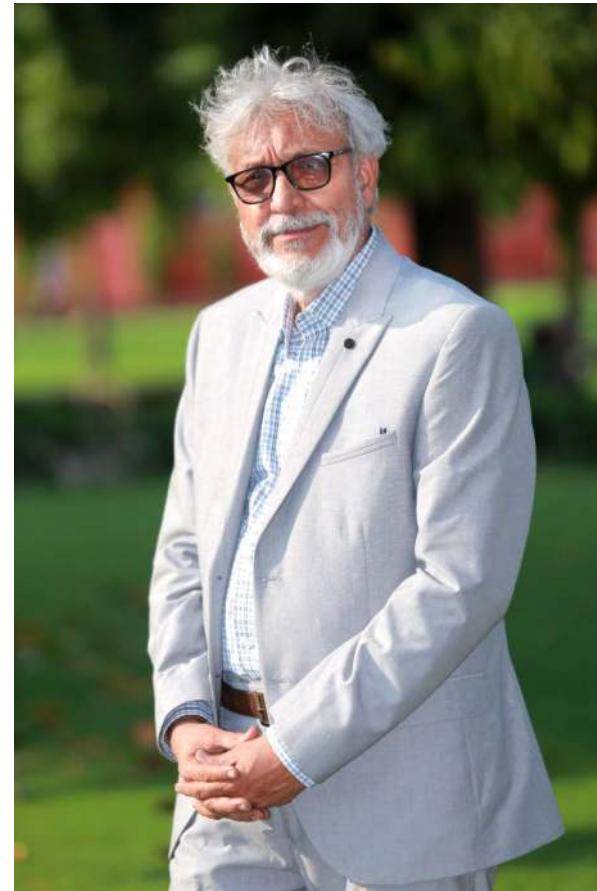
1. प्रदीप कुमार मोहंती
2. चेतना वशिष्ट
3. अरुण मलिक
4. नंदिता
5. डॉ सुधीर नाथ

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है और ना ही वे उसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

'राजभाषा मंजूषा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की राजभाषा पत्रिका है।'

संदेश

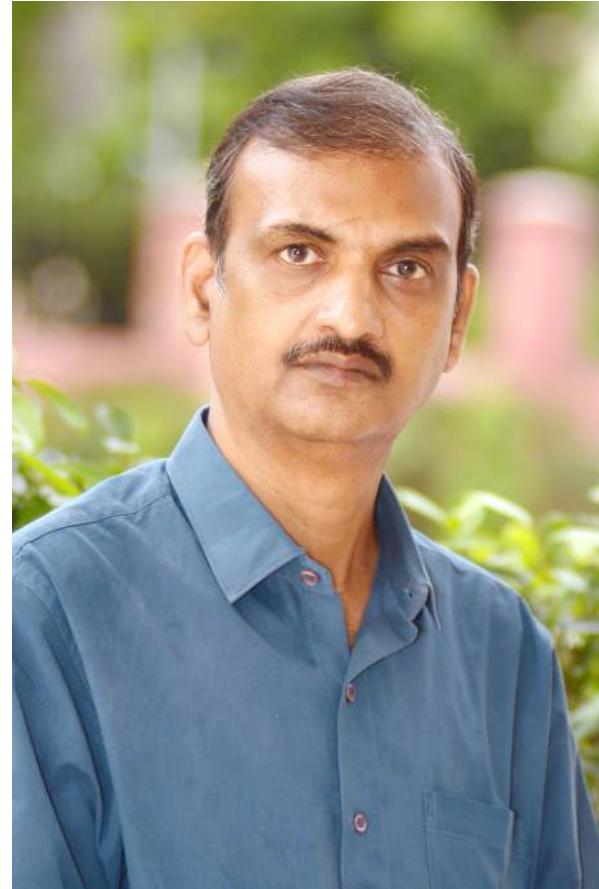


संस्कृति किसी भी समाज में गहराई तक रचे बसे उन गुणों का समग्र रूप होती है जो उस समाज को उन्हीं के अनुसार सोचने, विचारने, कार्य करने और विभिन्न परिस्थितियों में तदनुसार आचरण करने का एक ठोस और जड़युक्त माध्यम प्रदान करती है।

विश्वव्यापी विभिन्न संस्कृतियों में से भारतीय संस्कृति और उससे जुड़ी परंपराएं सर्वाधिक प्राचीन और सुदृढ़ हैं। भारतीय संस्कृति का इतिहास लगभग पांच हजार वर्ष पुराना है। हमारी संस्कृति का मूल मंत्र है 'विविधता में एकता' जिसको प्रत्येक भारतवासी के हृदय में निश्चित रूप से स्थान मिला हुआ है। भारतीय संस्कृति बहुरूपता के साथ-साथ वैशिक शांति और सौहार्द का संदेश देती है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय अपने आप में ही संस्कृति के एक बहुत ही अनूठे रूप को दर्शाता है जिसे हम नाटक कहते हैं। नाटक हमारी संस्कृति को बहुत ही सशक्त एवं संप्रेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। गृह पत्रिका के प्रस्तुत अंक का विषय 'भारतीय संस्कृति : एक अप्रतिम धरोहर' भारतवर्ष की समृद्धशाली सांस्कृतिक परंपराओं को दर्शाने का स्वल्प प्रयास है।

दिनेश खन्ना

अपनी बात



स्वदेशी संस्कृति का बखान कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और गुजरात से मणिपुर तक के विस्तृत भूखंड तक फैला हुआ है। संस्कृति की परिधि में संगीत, नृत्य, हस्तकला, शिल्पकला विभिन्न धर्मों के अनगिनत त्यौहार, विविध प्रकार के खान-पान, कई महाकाव्य एवं पौराणिक कथाएं, पारंपरिक वेशभूषा के साथ-साथ प्रत्येक भूखंड की अपनी एक पृथक भाषा का एक अलग ही विरला स्वरूप शामिल है। हम प्रस्तुत अंक के माध्यम से भारतीय संस्कृति के विविध रूपों को सघन और सुगठित रूप में दर्शाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस अंक के माध्यम से जहाँ हम यह जान पाते हैं कि किस प्रकार संस्कृति के स्वरूप को लेकर संघर्ष किया गया वहीं हम प्राचीन संस्कृति से रंगमंच एवं नृत्यकला के आविर्भाव की जानकारी ग्रहण पाते हैं। इस संग्रहण में संस्कृति के विभिन्न रूपों के सशक्त भाषाई माध्यम के रूप में विद्यमान हिन्दी के समुचित एवं समग्र विकास हेतु कुछ विशेष उपकरणों पर प्रकाश डाला गया है। इस विशेषांक में भारतीय संस्कृति को एक अप्रतिम धरोहर के रूप में रूपायित किया गया है।

आप सभी प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष यह अंक अपने कलात्मक एवं गुणात्मक स्वरूप के साथ प्रस्तुत है। मैं अपेक्षा रखता हूँ कि आप सभी इस अंक को सहर्ष स्वीकार करेंगे और ज्ञान अर्जित करेंगे।

•
ऋग्वीताण्ड
ओ. पी. सागर

संपादकीय



संस्कृति शब्द की व्याख्या करना अपने आप में एक दुर्लभ कृत्य है। संस्कृति एक ऐसा महासागर है जिसमें विभिन्न प्रकार के कला रूप, साहित्य, धार्मिक—संस्कार, लोक परंपराएं, भिन्न कालीन स्मारक, अतरंगी मान्यताएं, असंख्य भाषाएं और न जाने कितने ही तत्त्व बहुमूल्य रत्नों की भाँति पाए जाते हैं। मानव जाति का विकास जैसे—जैसे अपने स्वरूप को और अधिक मुखर एवं स्पष्ट करता चला गया उसी प्रकार उससे जुड़ी मान्यताएं, धार्मिक संस्कार एवं कला—रूप इत्यादि अपने आप ही संग्रहित होकर मानवीय संवर्धन में अपना योगदान देती रहीं। सोचिए विश्व का प्रत्येक भू—भाग किस प्रकार एक दूसरे भू—भागीय अंश से पृथक रहा होगा ? इस प्रश्न के कई उत्तर हो सकते हैं। परन्तु यदि हम वसुधा के एक छोटे से भाग को दूसरे भाग से अलग करके पहचानेंगे तब उसकी व्याख्या उस स्थान की संस्कृति का रूप—स्वरूप दूसरे भाग से निश्चित तौर पर अलग और विशिष्ट पाया जाएगा। विश्व के सात विस्तृत महाद्वीप में से एक ऐश्विया ऐसा भू—भाग है जिसमें लगभग अड़तालीस देश शामिल हैं। इन्हीं में से एक है हमारा अनुपम भारत देश है जिसमें कि कई धर्म, मान्यताएं, विचार, कलाएं इत्यादि समग्र रूप से हमारी संस्कृति की नींव के सशक्त खण्ड हैं। आज जहाँ पूरा विश्व वैज्ञानिक विचार धारा का हाथ थामे सामाजिक एवं वैचारिक उत्कर्ष की ओर अग्रसर हो रहा है वहीं भारतीय संस्कृति अध्यात्म के बलबूते पर संपूर्ण अभ्युदय के मार्ग पर निरंतर प्रशस्त होती रही है। हम अपने शास्त्रों और वेदों की परम्परा के प्रति इतने विश्वस्त और दृढ़ हैं कि हम अपनी संस्कृति से मिले हुए आयुर्वेद, योग, एकाग्रता (मेडिटेशन) आदि तत्वों पर पूर्णता से आश्रित

हैं। परन्तु इन सब बातों से यह बिल्कुल भी नहीं तय हो जाता कि हम विज्ञान और यथार्थवादी विचारधारा के विरुद्ध हैं। हमारी संस्कृति द्विधारा युक्त है जहाँ विज्ञान और अध्यात्म अपने—अपने छोरों पर पुख्ता और सुदृढ़ रूप में खड़े रहकर भारतीय संस्कृति में अपनी—अपनी भूमिका अविरल निभाते आ रहे हैं।

प्रस्तुत अंक हमारी इसी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के विविधतापूर्व एवं अतुल्य रूप को संक्षिप्तता से दर्शाने में क्रम के तैयार किया गया है। वर्तमान अंक में अंकित किए गए लेख जहाँ भारतीय संस्कृति के कलात्मक रूप जैसे रंगमंच, नृत्य, संगीत इत्यादि को दर्शाते हैं वहीं उनमें हमारी राजभाषा हिन्दी के स्वरूप और उससे जुड़ी चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला गया है। हम अपनी भाषा के विकास में किन विशेष पड़ावों से होकर गुज़रें कि इस भाषा रूपी विशालतम परिदें को अपने नीड़ तक बिना किसी सहारे के पहुँचा सकें? इस कथ्यात्मक प्रश्न पर सटीक विवेचन प्रस्तुत है। पत्रिका में एक मार्मिक एवं व्यंगात्मक कहानी का समावेश भी किया गया है। साथ ही काव्य संकलन में समाहित कविताएं कई विभिन्न विषयों की धारा बनकर पत्रिका रूपी छोटे से सागर में मिल रही हैं। हम अपने सभी जिज्ञासु और सुसंस्कृत पाठकों से यह आशा रखते हैं कि वे पत्रिका के इस अंक रूपी धरोहर को अपनी ज्ञान श्रृंखला का एक सूक्ष्म सा ही सही ध्रुवतारा अवश्य बनाएंगे।

चेतना वशिष्ठ

सम्पादक

राजभाषा कीर्ति पुरस्कार

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की गृह पत्रिका राजभाषा मंजूषा के अंक 21 एवं 22 को संयुक्त रूप से राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की पुरस्कार योजना के अंतर्गत 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' के प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। गृह पत्रिकाओं के क्षेत्र में यह सर्वोच्च राष्ट्रीय पुरस्कार है। यह पुरस्कार माननीय गृह मंत्री, श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा हिन्दी दिवस के अवसर पर दिनांक 14 सितंबर, 2021 को प्रदान किया गया।





12 'प्र' से किया जा सकता है राजभाषा हिंदी का समृच्छित विकास

डॉ. सुमीत जैरथ



राजभाषा अर्थात् राज—काज की भाषा, अर्थात् सरकार द्वारा आम—जन के लिए किए जाने वाले कार्यों की भाषा। राजभाषा के प्रति लगाव और अनुराग राष्ट्र प्रेम का ही एक रूप है। संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया था। वर्ष 1975 में राजभाषा विभाग की स्थापना की गई और यह दायित्व सौंपा गया कि सभी केंद्र सरकार के कार्यालयों/मंत्रालयों/उपक्रमों/ बैंकों आदि में अधिक से अधिक कार्य हिंदी में किया जाना सुनिश्चित किया जाए। तब से लेकर आज तक देश भर में स्थित केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों एवं विभागों आदि में सरकार की राजभाषा नीति का अनुपालन तथा सरकारी काम—काज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने में राजभाषा विभाग की अहम् भूमिका रही है। राजभाषा विभाग अपने क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालयों और नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के माध्यम से सभी स्तरों पर राजभाषा का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करता है।

हम सभी जानते हैं कि जब हमारे संविधान निर्माता संविधान को अंतिम स्वरूप दे रहे थे, इसका आकार बना रहे थे, उस वक्त कई सारी ऐसी चीजें थीं जिसमें मत—मतांतर थे। देश की राजभाषा क्या हो? इसके विषय में इतिहास गवाह है कि तीन दिन तक इस संदर्भ में बहस चलती रही और देश के कोने—कोने का प्रतिनिधित्व करने वाली संविधान सभा में जब संविधान निर्माताओं ने समग्र स्थिति का आकलन किया, दूरदर्शिता के साथ अवलोकन, चिंतन कर एक निर्णय पर पहुंचे तो पूरी संविधान सभा ने सर्वानुमत से 14 सितंबर 1949 के दिन हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया।

26 जनवरी 1950 को लागू भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में यह प्रावधान रखा गया कि संघ की राजभाषा 'हिंदी' व लिपि 'देवनागरी' होगी।

अनुच्छेद 351 के अनुसार भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द—भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से, और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए हिंदी की समृद्धि सुनिश्चित की जानी है।

महान लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी की पंक्तियां 'आप जिस प्रकार बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिए भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए' को ध्यान में रखते हुए राजभाषा हिंदी को और सरल, सहज और स्वाभाविक बनाने के लिए राजभाषा विभाग ढूँढ़ संकल्प है। केंद्र सरकार के कार्यालयों/मंत्रालयों/उपक्रमों/बैंकों आदि में राजभाषा हिंदी में काम करने को दिन—प्रति—दिन सुगम और सुवोध बनाने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही साथ प्रधानमंत्री जी के "आत्मनिर्भर भारत" "स्थानीय के लिए मुखर हों (Self Reliant India & Be vocal for local) के अभियान को आगे बढ़ाते हुए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत में सी—डेक, पुणे के सौजन्य से निर्मित स्मृति आधारित अनुवाद टूल "कंठरस्थ" का विस्तार कर रहा है जिससे अनुवाद के क्षेत्र में समय की बचत करने के साथ—साथ एकरूपता और उत्कृष्टता भी सुनिश्चित हो



राजकीय प्रयोजनों में राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार बढ़ाने तथा विकास की गति को तीव्र करने संबंधी संवैधानिक दायित्वों को पूर्ण करने के संबंध में हमारी प्रभावी रणनीति किस प्रकार की होनी चाहिए, इसका मूल सूत्र क्या होना चाहिए? इस पर विचार करने के दौरान मुझे माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा दिए जाने वाले 'स्मृति-विज्ञान' (Mnemonics) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी नज़र आती है। विदेश से भारत में निवेश बढ़ाने के लिए माननीय प्रधानमंत्री जी के छह डी-

Democracy (लोकतंत्र)

Demand (मांग)

Demographic Dividend (जनसांख्यिकीय विभाजन)

Deregulation (अविनियमन)

Descent (उत्पत्ति)

Diversity (विविधता)

से प्रेरणा लेते हुए राजभाषा के सफल कार्यान्वयन के लिए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने "12 प्र की रणनीति-रूपरेखा (Frame work) की संरचना की है, जो निम्न प्रकार से है:

1 प्रेरणा (Inspiration and Motivation)

प्रेरणा (Inspiration) का सीधा तात्पर्य पेट की अग्नि (Fire in the belly) को प्रज्ज्वलित करने जैसा होता है। हम सभी यह जानते हैं कि प्रेरणा में बड़ी शक्ति होती है और यह प्रेरणा सबसे पहले किसी भी चुनौती को खुद पर लागू कर दी जा सकती है। प्रेरणा कहीं से भी प्राप्त हो सकती है लेकिन यदि संस्थान का शीर्ष अधिकारी किसी कार्य को करता है तो निश्चित रूप से अधीनस्थल अधिकारी/कर्मचारी उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

2 प्रोत्साहन (Encouragement)

मानव स्वभाव की यह विशेषता है कि उसे समय-समय पर प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ती है। राजभाषा हिंदी

नहीं सी चीटी जब दाना लेकर चलती है, चढ़ती दीवारों पर
सौ बार फिसलती है
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती, कोशिश करने
वालों की कभी हार नहीं होती।



के क्षेत्र में यह प्रोत्साहन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधीनस्थ अधिकारियों/कर्मचारियों को समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहने से उनका मनोबल ऊँचा होता है और उनके काम करने की शक्ति में बढ़ोतरी होती है।

3 प्रेम (Love and Affection)

वैसे तो प्रेम जीवन का मूल आधार है किंतु कार्य क्षेत्र में अपने शीर्ष अधिकारियों द्वारा प्रेम प्राप्त करना कार्य क्षेत्र में नई ऊर्जा का संचार करता है। राजभाषा नीति सदा से ही प्रेम की रही है। यही कारण है कि आज पूरा विश्व हिंदी के प्रति प्रेम की भावना रखते हुए आगे बढ़ रहा है।

4 प्राइज़ अर्थात् पुरस्कार (Rewards)

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा प्रत्येक वर्ष राजभाषा कीर्ति पुरस्कार और राजभाषा गौरव पुरस्कार दिए जाते हैं। राजभाषा कीर्ति पुरस्कार केंद्र सरकार के मंत्रालयों/विभागों/बैंकों उपक्रमों आदि को राजभाषा के उत्कृष्ट कार्यान्वयन के लिए दिए जाते हैं और राजभाषा गौरव पुरस्कार विभिन्न मंत्रालयों/विभागों/उपक्रमों बैंकों आदि के सेवारत तथा सेवानिवृत अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा हिंदी में लेखन कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदान किए जाते हैं। यह पुरस्कार 14 सितंबर, हिंदी दिवस के दिन माननीय राष्ट्रपति महोदय द्वारा प्रदान किए जाते हैं। पुरस्कारों का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि देश के कोने-कोने से इन पुरस्कारों के लिए प्रविष्टि आती है। जब मैंने राजभाषा विभाग का कार्यभार संभाला उस समय स्मृति आधारित अनुवाद टूल 'कंठस्थ' के



अंदर डेटाबेस को मजबूत करने के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता एवं सचिव(रा.भा.) की ओर से प्रशस्ति पत्र देने का निर्णय किया। इस कदम का यह परिणाम हुआ कि लगभग छह महीने के अंदर ही कंठस्थ का डाटा 20 गुना से ज्यादा बढ़ गया। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि प्रतिस्पर्धा एवं प्राइज यानि पुरस्कार का महती योगदान होता है।

5 प्रशिक्षण (Training)

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान तथा केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो के माध्यम से प्रशिक्षण का कार्य करता है। पूरे वर्ष अलग—अलग आयोजनों में सैकड़ों की संख्या में प्रशिक्षणार्थी इन संस्थानों के माध्यम से प्रशिक्षण पाते हैं। कहते हैं — “आवश्यकता, आविष्कार और नवीकरण की जननी है।” कोरोना महामारी ने हम सभी के सामने अप्रत्याशित संकट और चुनौती खड़ी कर दी। समय—समय पर प्रधानमंत्री जी ने राष्ट्र को संबोधित कर हम सभी को इस महामारी से लड़ने के लिए संबल प्रदान किया। इससे प्रेरित होकर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने आपदा को अवसर में परिवर्तित कर दिया। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का आश्रय लेते हुए ई—प्रशिक्षण और माइक्रोसॉफ्ट टीम्स के माध्यम से हमारे दो प्रशिक्षण संस्थान — केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान तथा केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो ने पहली बार ऑनलाइन माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया। माननीय प्रधानमंत्री जी के आत्मनिर्भर भारत—स्थानीय के लिए मुखर हों (Be Local for Vocal) अभियान के अंतर्गत राजभाषा विभाग द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम को स्वदेशी NIC & Video Desk Top पर माइग्रेट किया जा

रहा है।

6 प्रयोग (Usage)

‘यदि आप प्रयोग नहीं करते हैं तो आप उसे भूल जाते हैं (If you do not use it] you lose it) हम जानते हैं कि यदि किसी भाषा का प्रयोग कम किया जाए या न के बराबर किया जाए तो वह धीरे—धीरे मन मस्तिष्क के पटल से लुप्त होने लगती है इसलिए यह आवश्यक होता है की भाषा के शब्दों का व्यापक प्रयोग समय समय पर करते रहना चाहिए। हिंदी का प्रयोग अपने अधिक से अधिक काम में मूल रूप से करें ताकि अनुवाद की बैसाखी से बचा जा सके और हिंदी के शब्द भी प्रचलन में रहें।

7 प्रचार (Advocacy)

संविधान ने हमें राजभाषा के प्रचार का एक महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा है जिसके अंतर्गत हमें हिंदी में कार्य करके उसका अधिक से अधिक प्रचार सुनिश्चित करना है। हिंदी के प्रचार में हमारे शीर्ष नेतृत्वे — माननीय प्रधानमंत्री जी तथा माननीय गृह मंत्री जी राजभाषा हिंदी के मेसकोट—ब्रैंड राजदूत (Brand Ambassador) के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। देश—विदेश के मंचों पर हिंदी के प्रयोग से राजभाषा हिंदी के प्रति लोगों का उत्साह बढ़ा है। हम जानते हैं कि स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में एक संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की गई। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का पक्ष इसलिए प्रबल था क्योंकि इसका अंतर्राष्ट्रीय प्रचार शताब्दियों पहले ही हो गया था। उसके इस प्रचार में किसी राजनीतिक आंदोलन से ज्यादा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित तीर्थ स्थानों में पहुंचने वाले श्रद्धालुओं का योगदान था। उनके द्वारा भिन्न—भिन्न भाषा—भाषियों के साथ संपर्क करने का एक प्रमुख माध्यम भाषा हिंदी थी जिससे स्वातः ही हिंदी का प्रचार होता था। आधुनिक युग में प्रचार का तरीका भी बदला है। तकनीक के इस युग में संचार माध्यमों को बड़ा योगदान है इसलिए राजभाषा हिंदी के प्रचार में भी इन माध्यमों का अधिकतम उपयोग समय की मांग है।

8 प्रसार (Transmission)

राजभाषा हिंदी के काम का प्रसार करना सभी केंद्र सरकार के कार्यालयों/बैंकों/उपक्रमों आदि की प्राथमिक जिम्मेदारी में है और यह संस्था प्रमुख का दायित्व है कि वह संविधान के द्वारा दिए गए दायित्वों जिसमें कि प्रचार-प्रसार भी शामिल है, का अधिक से अधिक निर्वहन करे। राजभाषा हिंदी का प्रयोग बढ़ाने और कार्यालय स्तर पर हिंदी में लेखन को प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने में हिंदी गृह-पत्रिकाओं का विशेष महत्व है, इसलिए राजभाषा विभाग द्वारा विभिन्न केंद्रीय संस्थानों द्वारा प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं को राजभाषा कीर्ति पुरस्कार दिया जाता है। राजभाषा विभाग द्वारा अपनी वेबसाइट rajbhasha.gov.in पर बनाए गए ई-पत्रिका पुस्तकालय के माध्यम से हिंदी के पाठक विभिन्न सरकारी संस्थानों द्वारा प्रकाशित होने वाली ई-पत्रिकाओं से लाभान्वित हो सकेंगे राजभाषा हिंदी के प्रसार में दूरदर्शन, आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके साथ-साथ बालीवुड ने हिंदी के प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया है।

9 प्रबंधन (Administration and Management)

यह सर्वविदित है कि किसी भी संस्थान को उसका कुशल प्रबंधन नई ऊचाइयों तक ले जा सकता है इसे ध्यान में रखते हुए संस्थान प्रमुखों को राजभाषा के क्रियान्वयन संबंधी प्रबंधन की जिम्मेसदारी सौंपी गई है। राजभाषा नियम, 1976 के नियम 12 के अनुसार केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व है कि वह राजभाषा अधिनियम 1963, नियमों तथा समय-समय पर राजभाषा विभाग द्वारा



जारी दिशा-निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन सुनिश्चित कराएं, इन प्रयोजनों के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच-बिंदु बनवाएं और उपाय करें।

10 प्रमोशन (पदोन्नति) (Promotion)

राजभाषा हिंदी में तभी अधिक ऊर्जा का संचार होगा, जब राजभाषा कार्यान्वयन के लिए नियुक्त अधिकारी एवं कर्मचारी ; केंद्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा संवर्ग के सदस्यगण, सभी उत्साहवर्धक और ऊर्जावान हों और अपना कर्तव्य पूरी निष्ठा और समर्पण से निभाएं समय-समय पर प्रमोशन (पदोन्नति) मिलने पर निश्चित रूप से उनका मनोबल बढ़ेगा और इच्छाशक्ति सुदृढ़ होगी।

11 प्रतिबद्धता (Commitment)

राजभाषा हिंदी को और बल देने के लिए मंत्रालय/विभाग/सरकारी उपक्रम/राष्ट्रीयकृत बैंक के शीर्ष नेतृत्व (माननीय मंत्री महोदय, सचिव, संयुक्त सचिव (राजभाषा), अध्यक्ष और महाप्रबंधक) की प्रतिबद्धता परम आवश्यक है माननीय संसदीय राजभाषा समिति के सुझाव अनुसार और राजभाषा विभाग के अनुभव से यह पाया गया है कि जब शीर्ष नेतृत्व हिंदी के प्रगामी/उत्तरोत्तर ही नहीं, अपितु अधिकतम प्रयोग के लिए स्वयं मूल कार्य हिंदी में करते हैं तब उनके उदाहरणमय नेतृत्व (Exemplary Leadership) से पूरे मंत्रालय/विभाग/उपक्रम/बैंक को प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता है यद्य पर हिंदी के लिए एक अनुकूल और उत्साहवर्धक वातावरण बनाते हैं और बीच-बीच में हिंदी के कार्यान्वयन की निगरानी (Monitoring) करते हैं तब हिंदी की विकास यात्रा और तीव्र होती है जैसे कि गृह मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय में देखा गया है। अभी हाल में ही राजभाषा विभाग ने सबको पत्र लिखकर आग्रह किया है:

(क) हर माह में एक बार सचिव/अध्यक्ष अपनी अध्यक्षता में जब वरिष्ठ अधिकारियों की बैठक करते हैं तब इसमें हिंदी में काम-काज की प्रगति और राजभाषा नियमों के कार्यान्वयन का मद भी अवश्य रखें और चर्चा करें।

(ख) अपने मंत्रालय/विभाग/संस्थान में अपने संयुक्त सचिव (प्रशासन)/प्रशासनिक प्रमुख को ही हिंदी कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व दें और हर तिमाही में उनकी अध्यक्षता में विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति (OLIC) की बैठक करें।

12 प्रयास (Efforts)

राजभाषा कार्यान्वयन को प्रभावी रूप से सुनिश्चित करने की दिशा में यह अंतिम 'प्र' सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार हमें लगातार यह प्रयास करते रहना है कि राजभाषा हिंदी का संवर्धन कैसे किया जाए। यहां कवि सोहन लाल द्विवेदी जी की पंक्तियां एकदम सटीक बैठती हैं कि

लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

नहीं चींटी जब दाना लेकर चलती है
चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

दुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है
जा जाकर खाली हाथ लौटकर आता है
मिलते नहीं सहज ही मोती गहरे पानी में
बढ़ता दुगना उत्साह इसी हैरानी में
मुझी उसकी खाली हर बार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

असफलता एक चुनौती है, स्वीकार करो
क्या कमी रह गई, देखो और सुधार करो
जब तक न सफल हो, नींद चैन को त्यागो तुम
संघर्ष का मैदान छोड़ मत भागो तुम
कुछ किये बिना ही जय जयकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

संवैधानिक दायित्वों को पूर्ण करते हुए राजभाषा हिंदी को और अधिक सरल बनाने के लिए राजभाषा विभाग दृढ़ संकल्प और निरंतर प्रयासरत है। विभाग सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology) का भी आश्रय ले रहा है। विभाग का मानना है कि राजकीय प्रयोजनों में हिंदी की गति को तीव्र करने के लिए ये दोनों आवश्यक परिस्थितियां (Necessary Conditions) हैं। इस दिशा में और गति देने के लिए शीर्ष नेतृत्व की प्रतिबद्धता और प्रयास पर्याप्त परिस्थितियां (Sufficient Conditions) हैं।

संघ की राजभाषा नीति के अनुसार हमारा संवैधानिक दायित्व है कि हम राजभाषा संबंधित अनुदेशों का अनुपालन तत्परता और पूरी निष्ठा के साथ करें। हम स्वदयं मूल कार्य हिंदी में करते हुए अन्य अधिकारियों / कर्मचारियों से भी राजभाषा अधिनियमों का अनुपालन सुनिश्चित कराएं ताकि प्रशासन में पारदर्शिता आए और आमजन सभी सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों का लाभ निर्बाध रूप से उठा सकें। मुझे पूर्ण विश्वारस है कि इन बारह 'प्र' को ध्यान में रखकर राजभाषा हिंदी का प्रभावी कार्यान्वयन करने की दिशा में सफलता प्राप्त होगी और हम सब मिलकर माननीय प्रधानमंत्री जी के 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत; 'सुदृढ़ आत्मनिर्भर भारत' के सपने को साकार करने में सफल होंगे।

आदिम युग की संस्कृति के भीतर से उभरता रंगमंच

देवेन्द्र राज अंकुर

हम जब भी कोई नाटक देखने जाते हैं तो प्रायः हमारे मन में एक सवाल पैदा होता है कि हम आज अपनी आँखों के सामने मंच पर जो कुछ घटित होता हुआ देख रहे हैं, उसकी शुरुआत कब, कहाँ और कैसे हुई होगी? बेशक यह सवाल किसी आम आदमी के मन में उठे न उठे; अथवा यह नितांत सम्भव है कि उसके सामने भी यह सवाल खड़ा होता ही होगा लेकिन हम स्वयं जो रंगकर्मी हैं, रंगमंच के छात्र अथवा अध्येता हैं अथवा पाठक/दर्शक हैं, उन्हें तो इस जिज्ञासा से प्रतिदिन दो-चार होना पड़ता है कि आज हम जो रंगमंच कर रहे हैं, जब कभी उसका जन्म हुआ होगा तो उस पहले नाटक का स्वरूप, आकार और प्रकार क्या रहा होगा? ऐसे कौन से ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कारण और दबाव रहे होंगे कि मनुष्य के भीतर इस कला की अभिव्यक्ति को बाहर लाने की इच्छा उत्पन्न हुई? स्पष्ट है कि रंगमंच की कहानी को गहराई से समझने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं, तारीखों और दस्तावेजों से ज़्यादा तत्कालीन स्थितियों और परिस्थितियों की छानबीन करनी होगी जिनके भीतर से रंगमंच जैसी कला का आविर्भाव हुआ होगा।

इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि रंगमंच एक मानवीय कला है। अतः उसके जन्म की कहानी को स्वयं मनुष्य के जन्म की कहानी से जोड़कर देखना होगा। इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों ने मानवीय सभ्यता और संस्कृति जो भी अनुमानित और लिखित इतिहास प्रस्तुत किया है, उसके हिसाब से मानव के जन्म, विकास और अस्तित्व को चार युगों में विभाजित किया गया है।

शिकार युग – कम से कम दो लाख से तीन लाख वर्ष पूर्व तक।

पाषाण युग – पचास हज़ार से एक लाख वर्ष पूर्व तक।

कृषि युग – दस हज़ार वर्ष से लेकर आज तक

औद्योगिक युग – लगभग पाँच सौ वर्षों से लेकर आज तक।



उपर्युक्त चार युगों में से कम से कम पहले दो युग प्रागैतिहासिक काल से सम्बद्ध हैं अर्थात् इनका कोई लिखित इतिहास मौजूद नहीं है। साक्ष्य अथवा प्रमाण के रूप में अब तक अलग-अलग स्थानों पर की गई खुदाई में मिले मानव अवशेष, उसके रोज़मरा के इस्तेमाल की चीज़ें अथवा पत्थरों और चट्टानों पर अँकित एवं चित्रित स्मृति-चिह्न ही मिले हैं। आज तक उन्हीं के अध्ययन, निरीक्षण एवं जाँच-पड़ताल से आज से लगभग दो लाख साल पहले के आदिम समाज का जो चित्र हमारे सामने उभरकर आता है, उसे कुछ इस प्रकार लिपिबद्ध किया जा सकता है।

लगभग पैंतीस-छत्तीस वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध फ़िल्म निर्देशक श्याम बेनेगल ने भारतीय दूरदर्शन के लिए एक सीरियल बनाया था – भारत एक खोज। उसका आरम्भ जिस गीत से होता था, उसका भावार्थ कुछ यों था—सृष्टि के आरम्भ में मात्र जल-ही-जल था। फिर वनस्पतियों ने जन्म लिया। उसके बाद जीव-जन्तुओं का आविर्भाव हुआ। वैज्ञानिक अथवा इतिहासकार इस गीत का जो भी व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण दें, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस धरती पर सबसे अन्त में आने वाला मनुष्य नामक प्राणी है। उसकी भी सृष्टि अचानक से एक दिन में अपने आप नहीं हो गई, बल्कि वह एक क्रमिक विकास प्रक्रिया का परिणाम है। आज बेशक चार्ल्स डार्विन के उपर्युक्त निष्कर्ष या सिद्धांत पर प्रश्नचिह्न लगा दिया गया है लेकिन हम स्वयं अपने

समय में दूसरे क्षेत्रों में विकास की इस सहज क्रमिक प्रक्रिया को देखें तो हम आदिम मनुष्य के जन्म और विकास को सही परिप्रेक्ष्य में समझ पाएँगे। एक बहुत ही स्थूल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है फ़िल्म, टेलीविज़न, कम्प्यूटर और मोबाइल तक पहुँचने की प्रक्रिया। यदि हम फ़िल्म से पहले रंगमंच को भी जोड़ लें तो हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है कि रंगमंच से फ़िल्म तक आने की प्रक्रिया में कितने लाख वर्ष का समय लगा होगा।

जीव—जन्तुओं के बाद जिस मनुष्य नामक प्राणी का आगमन हुआ, उसे 'होमो सेपियन' नाम दिया गया है। इस शब्द का शब्दिक अर्थ है बुद्धिमान अथवा दिमाग़ वाला प्राणी। इसका अर्थ यह है कि जिस समय सृष्टि पर जीव—जन्तुओं का आगमन हुआ, उस समय कुछ ऐसे प्राणी भी थे जिनके पास दिमाग़ था, जो सोच सकते थे। बेशक शुरू में वे भी और जन्तुओं की तरह चौपाए आर्थात् चार पैरों पर ही चलते थे। लेकिन अपने सोचने के गुण के कारण उन्होंने दो पैरों के सहारे चलना सीख लिया और अपने बाकी दो पैरों को हाथों के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया आर्थात् अब वह चलने का काम सिर्फ़ दो पैरों से कर सकता था और शेष दो पैरों को चलने की बजाय किसी भी रूप में इस्तेमाल कर सकता था। उदाहरण के लिए, हथियार बनाना, खाना, समान को इधर—उधर उठाकर ले जाना इत्यादि। इसी के साथ उसके जीवन में ओर भी बहुत से परिवर्तन आए। वह अकेला न रहकर जंगलों और पर्वतों की गुफ़ाओं में क़बीले के बीच रहने लगा। अब क़बीले के लिए रहने के साथ—साथ दूसरी व्यवस्थाएँ भी करनी थीं। उसकी सबसे बड़ी ज़रूरत थी खाना। इससे पहले अकेले रहकर वह दूसरे जीव—जन्तुओं के साथ इस ज़रूरत को जैसे—तैसे पूरा कर लेता होगा लेकिन अब एक भूरे—पूरे समुदाय, टोले और क़बीले के लिए भोजन जुटाने की समस्या थी। इसके लिए वे छोटे बच्चों और शायद औरतों (विशेषकर बूढ़ी औरतों) को क़बीले में ही छोड़कर समूह में शिकार करने के लिए निकलते थे। दिन ढले वे लोग अपने ठिकाने की ओर लौटते। जो कुछ भी शिकार में लाया जाता उसे अपने ठिकाने के सामने खुले मैदान में बीचों—बीच रखकर उसके चारों तरफ़ एक घेरा बनाकर बैठ जाते। आसपास से घासफूस, लकड़ियाँ इकट्ठी करके, लाए गए जानवरों को पकाने—भूनने के लिए आग जला दते। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि

बहुत पहले ही कभी पत्थरों को आपस में टकराने के क्षण में उसने आग की खोज कर ली थी।

आज से लगभग डेढ़ दो लाख साल पहले के इस दृश्य की कल्पना कीजिए—रात का समय, खुले मैदान में बीचों—बीच जलती आग और एक घेरे में बैठे लोग। अचानक एक आदमी अपने दिन भर के शिकार के अनुभव से जुड़ी कोई घटना सुनाना शुरू कर देता है। ज़ाहिर है यह घटना किसी ऐसे अनुभव से जुड़ी है जिसमें किसी 'क्राइसिस' का सामना करना पड़ा होगा उसे। सब लोग एकाग्रचित होकर उसकी कहानी सुन रहे हैं। बीच—बीच में अपनी प्रतिक्रिया भी देते चलते हैं—कभी हुँकारे के रूप में, कभी एक साथ आश्चर्यचकित ध्वनि या उच्छावास के रूप में। ध्यान रहे उस आदिम मनुष्य के पास अभी तक शब्दों वाली कोई भाषा नहीं थी, जैसी कि आज हम लोग बोलने के अभ्यस्त हैं। वे गँगे भी नहीं थे। उनकी अपनी एक भाषा थी—ध्वनियों की, मुद्राओं की, चेहरे के क्षण—क्षण बदलते हाव—भाव की। जब एक आदमी की कहानी ख़त्म हो जाती, तो घेरे में बैठा कोई दूसरा आदमी कहानी शुरू कर देता। कहानी सुनने—सुनाने की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती जब तक उनका भोजन पक न गया होता और फिर उनका सामूहिक महाभोज शुरू होता। उसके बाद नाचना—गाना और अपने—अपने क़बीले में सोने की तैयारी क्योंकि सुबह फिर से शिकार के लिए निकलना होगा।

दो पैरों पर चलने, क़बीले में रहने, शिकार करने के बाद यह पहली घटना थी, जो उसके जीवन में अनायास ही प्रवेश कर गई, जिसे रंगमंच की शुरुआत के रूप में विश्लेषित किया जा सकता है। हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि बेशक हर नाटक में एक कहानी होती है लेकिन नाटक या रंगमंच की पहली



शुरुआत कहानी सुनाने से हुई। कहानी भी ऐसी जिसमें कोई संकट, कोई संघर्ष, कोई रहस्य, कोई तनाव और कुछ अप्रत्याशित घटित होता हो। क्या आज भी हम किसी ऐसी ही कहानी की तलाश में नहीं रहते जिसमें उपर्युक्त सभी गुण हों? यदि कहानी में ये सभी गुण होंगे तो वह श्रोताओं को अपने वश में कर सकेगी।

बहुत दिनों तक घेरे में बैठे कहानी सुनाने और सुनने की प्रक्रिया में अचानक एक दिन बहुत बड़ा परिवर्तन घटित हो गया। हुआ यों कि जो आदमी कहानी सुना रहा था, वह एक क्षण विशेष में उठकर खड़ा हो गया और घेरे में घूम—घूम कर कहानी को सुनाने और उससे ज्यादा दिखाने लगा। आखिर उसके साथ ऐसा क्या हुआ होगा कि वह अपनी जगह पर बैठा नहीं रह सका और वह तुरंत उठकर खड़ा हो गया। क्या अपने उस दिन के शिकार के अनुभव से वह भीतर से बहुत ज़्यादा उद्वेलित था? क्या उसे अपने भीतर एक अन्तः स्फूर्ति अथवा इंट्यूशन महसूस हुआ कि वह स्थिर होकर बैठा न रह सका? शायद उसका अपना अनुभव इतना ज़बरदस्त, खतरनाक और हृदय—विदारक रहा होगा कि उसे लगा कि इस अनुभव की दास्तान बैठे—बैठे की बजाय, कर के दिखाने से ही अपने पूरे प्रभाव के साथ साकार होगी। जो भी हो, उस दिन उस आदिम मनुष्य ने अपने अनजाने एक ऐसी मानवीय कला को जन्म दे डाला था, जिसे आज हम रंगमंच के नाम से जानते हैं। अभी भी उसमें कहानी को सुनने का अनुभव शामिल था लेकिन अब उसमें सुनने के साथ—साथ देखने का तत्त्व भी जुड़ गया था। यही वह पड़ाव था जहाँ से रंगमंच एक दृश्य काव्य के रूप में परिवर्तित हो गया। इससे पहले वह मात्र काव्य था जिसे सुनते हुए, श्रोता स्वयं अपने मन की आँखों के सामने उसकी छवियों को घटित होता हुआ देख रहे थे। बेशक वे सब एक साथ एक समूह में बैठे हुए थे, सब लोग एक क्षण विशेष में एक ही कहानी को सुन रहे थे। लेकिन तब भी उस कहानी के सारे अनुभव उनकी अपनी दिनचर्या से जुड़े होने के कारण बहुत ही परिचित होने के बावजूद उनके अपने मन में उनकी छवि नितांत, अपनी निजी छवि हो सकती थी। इस दूसरी अवस्था में जहाँ से कहानी को दिखाने की शुरुआत हुई, अब उनके सामने सुनाने वाले द्वारा तैयार किया जाता एक चित्र भी उपस्थित था। यह अलग बात है कि उस चित्र के समानान्तर, उनके अपने मन में कोई और चित्र

भी बन रहा होगा। लेकिन यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि कहानी—वाचन, वर्णन, श्रवण से अलग एक प्रदर्शन में परिवर्तित होती चली गई। यह सही है कि अभी उस प्रदर्शन में मात्र एक आदमी ही शामिल था, लेकिन तब भी रंगमंच एक प्रदर्शनकारी कला है, यह बात उस आदमी के घेरे में उठकर खड़े होने से उस दिन स्वतः प्रमाणित हो गई।

जब पहली बार किसी आदमी ने कहानी सुनाना शुरू किया था और उसे देखकर बाकी लोगों ने भी इस प्रक्रिया में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था तो इस बार भी ठीक वैसा ही हुआ। जेसे ही वह पहला आदमी अपने स्थान पर जाकर बैठा तो तुरंत दूसरा आदमी ठीक उसी अंदाज़ में उठकर खड़ा हो गया और घूम—घूमकर अपनी कहानी सुनाने लगा। इस पूरे घटनाक्रम से एक तथ्य और प्रमाणित होता है कि जब भी रंगमंच की शुरुआत हुई, वह मात्र एक आदमी के द्वारा ही हुई—चाहे पहले कहानी सुनाने के रूप में और फिर कहानी दिखाने के रूप में। यहाँ इस सच्चाई को भी रेखांकित करना ज़रूरी है कि जब उस एक आदमी के मन में कहानी सुनाने और फिर दिखाने की इच्छा पैदा हुई थी तो वह बिल्कुल सहज, अनायास प्रक्रिया के तहत हो गया था। उसके बाद जितने भी लोगों ने उसमें शिरकत की, ज़रूरी नहीं कि उनकी प्रक्रिया भी उतनी ही सहज रही हो। क्या हम आज भी लगभग इसी प्रक्रिया से नहीं गुज़रते? जब हम पहली बार कोई प्रस्तुति तैयार करते हैं, तो आलेख के चुनाव से लेकर उसक अंतिम प्रारूप तक काफ़ी कुछ अन्तः प्रेरणा से स्फुरित होता है लेकिन एक बार हो जाने के बाद अगले प्रदर्शनों में वह अन्तः स्फूर्ति किस सीमा तक रह पाती है?

बेशक रंगमंच की शुरुआत एक आदमी से हुई, लेकिन उसे एक सामूहिक कला बनने में देर न लगी। किसी एक दिन जब एक आदमी घेरे में घूम—घूमकर शिकार के अनुभवों को साझा कर रहा था तो उसी क्षण एक दूसरा आदमी शिकार अथवा जानवर के रूप में उस अनुभव में कूद पड़ा। ज़ाहिर है कि पहली बार किसी के अनुभव—क्षेत्र में कूदने की शुरुआत उसी अन्तःप्रेरणा से सम्भव हुई होगी, जिसके विषय में हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं। जब एक बार शुरुआत हो गई तो फिर हर बार एक के साथ दो और अन्तः बहुत से शिकारी और

बहुत से जानवर – आदिम मनुष्य की जिन्दगी में यही वह पड़ाव था जब वह शिकार को वास्तविक जीवन में भी एक समूह की तरह से ले रहा था और शिकार से लौटकर उसके प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में भी सामूहिक योगदान शामिल था। इस प्रकार आदिम युग के मनुष्य द्वारा अपनी दिनचर्या के अनुभवों को सबके साथ साझा करने में एक आदमी से पूरे समूह तक पहुँचने की प्रक्रिया में न जाने कितने हजार साल लगे होंगे।

अभी तक हमने आदिम समाज में रंगमंच को लेकर जितनी भी चर्चा की है, उस पर आगे बढ़ने से पहले दो—तीन महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान दिलाया जाना ज़रूरी है। चौथी शताब्दी ई. पू. में ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने अभिनय की परिभाषा देते हुए, लिखा था— *Art is an imitation of life* अर्थात् ‘कला जीवन का अनुकरण है’ या छाया है या प्रतिबिम्ब है। क्या आदि मानव ने अपनी उपर्युक्त गतिविधियों से अरस्तू की इस परिभाषा के लिए डेढ़—दो लाख वर्ष पहले ही एक भूमिका और पृष्ठभूमि तैयार नहीं कर दी थी? वे लोग भी, जो दिन भर में करते थे, संध्या के समय उसी की प्रस्तुति नहीं करते थे? कहा भी गया है कि साहित्य, कला एवं स्थापत्य जीवन से ही अपनी स्रोत—सामग्री ग्रहण करते हैं और अन्ततः जीवन को ही वह सामग्री लौटा देते हैं। दूसरी बात यह कि जीवन से सामग्री लेने के बावजूद क्या वह अपने मूल रूप में ही कला में आती है या आ पाती है? उदाहरण के लिए जब आदिम मनुष्य शिकार की घटना को प्रस्तुत कर रहा था तो वहाँ सचमुच का शिकार तो नहीं हो रहा था। एक आदमी जानवर की भूमिका में था तो दूसरा उसी क्षण सचमुच का शिकारी न होकर महज़ उसका अभिनय करने की कोशिश कर रहा था। दूसरे अर्थों में कहा जाए तो कला जीवन की हू—ब—हू अनुकृति न होकर उसकी पुनर्रचना हुआ करती है। हम आज जिसे लेकर इतना विवेचन—विश्लेषण करते हैं, आदिम मनुष्य ने कला के इस रहस्य को अपने अनजाने में अपनी रोज़मरा की दिनचर्या में ही खोज लिया था।

जब रंगमंच एक सामूहिक गतिविधि में बदल गया तो उसकी प्रक्रिया में एक और महत्वपूर्ण पड़ाव आया। रोज़ाना सुबह शिकार पर जाने और लौटने पर पूरे क़बीले की सामूहिक हिस्सेदारी — सब लोग देर रात तक इन गतिविधियों में फ़ँसे रहते। नतीजा ये होता कि

कई बार सुबह आँख जल्दी न खुलती अथवा शिकार पर जाने का मन नहीं होता। जब बार—बार ऐसा होने लगा तो क़बीले के बड़े—बूढ़े लोगों ने एक रास्ता सुझाया—बजाय इसके कि शिकार से लौटने के बाद सारे लोग नाटकों के मंचन में भाग लें, क्यों न नाटकों की तैयारी और उनके मंचन की ज़िम्मेदारी कुछ लोगों को सौंप दी जाय। वे शिकार पर नहीं जाएँगे और पीछे रहकर शिकार की कहानियों पर आधारित नाटकों का अभ्यास करेंगे और शाम को जब बाकी लोग शिकार से लौटेंगे तो उनके मनोरंजन के लिए उन नाटकों का मंचन किया जाएगा। यहाँ से क़बीला दो हिस्सों में बँट गया — करने वाले और देखने वाले। इससे पहले जब सब लोग एक घेरे में बैठे होते थे तो इस तरह का भेद कभी नहीं था। सभी लोग करने वाले थे, सभी लोग देखने वाले थे। लेकिन इस नई व्यवस्था ने एक बड़े समूह को स्पष्टतः दो भागों में बँट दिया — एक प्रदर्शन करने वाला अर्थात् अभिनेता और दूसरा उस प्रदर्शन को देखने वाला अर्थात् दर्शक या प्रेक्षक। क्या यह तथ्य अपने आप में काफ़ी दिलचस्प नहीं कि हमारी मानव—सभ्यता के शैशव काल में ही (जिसे हम आदिम युग के नाम से जानते हैं) अभिनेता नाम के वर्ग का जन्म हो चुका था। पढाई—लिखाई या शिक्षा—दीक्षा के मामले में वह भले ही बहुत पिछड़ा हुआ हो, लेकिन अभिनय के तीन गुणों के मामले में वह आज के किसी भी प्रशिक्षित अभिनेता से कम नहीं था। वे गुण हैं — पर्यवेक्षण, कल्पना शक्ति; और इन दोनों के समन्वय से किसी भी काम को एकदम सफलता के साथ प्रस्तुत कर देना। शिकार के नाटक में जानवर की चाल, स्वभाव, आक्रमण करने की मुद्रा के साथ—साथ शिकारी की भूमिका में शरीर का फुर्तीलापन, चौकन्नी दृष्टि, बलिष्ठ सौष्ठव—इन सबका उसके पास कोई अभाव नहीं था। इससे भी ज़्यादा महत्व इस बात का था कि एक बड़े दर्शक—समुदाय के सामने एक सफल और मनोरंजक नाटक प्रस्तुत करने की चुनौती भी मौजूद थी। कला का पहला उद्देश्य मनोरंजन है और उसके बहाने से शिक्षा देना भी ज़रूरी है—जिस तथ्य और सत्य की तरफ आज से ढाई—तीन हजार वर्ष पहले भरत, अरस्तू और पिछली शताब्दी में ब्रेष्ट ने संकेत किया था, हमारा आदिम समाज उसे अपनी दिन—प्रतिदिन की गतिविधियों से न जाने कितना पहले प्रमाणित कर चुका था।

गतिविधि की प्रक्रिया में बदलाव तो आया ही, उसने

प्रस्तुतिकरण के स्वरूप में भी काफ़ी कुछ बदलकर रखा दिया – विशेष रूप से स्पेस के इस्तेमाल के रूप में। पहले जहाँ सारी क्रियाएँ एक गोल घेरे के भीतर होती थीं, वे अब ऐसी स्पेस में होने लगीं जो दो भागों में बँट गया – घेरे का एक हिस्सा अभिनेताओं के काम में आने लगा और बाकी तीन हिस्से दर्शकों के लिए छोड़ दिए गए। अभी भी अभिनेता और दर्शक एक–दूसरे के आस–पास हैं लेकिन उनमें स्पष्ट विभाजन हो चुका है। इस तरह की स्पेस को बाद में थ्रस्ट स्पेस, प्रोजेक्टेड स्पेस अथवा थ्री साइडेड स्पेस के नाम से पुकारा गया। लेकिन इसकी नींव आदिम काल में ही पड़ चुकी थी।

कालान्तर में शिकार के साथ–साथ युद्ध और लड़ाई जैसी कहानियाँ भी इन आदिम नाटकों का हिस्सा बनने लगीं। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि आदिम समाज कबीलों के रूप में रहने की शुरुआत कर चुका था, अतः यह स्वाभाविक था कि भूमि, सम्पत्ति, स्त्री को लेकर उनमें प्रायः लड़ाई–झगड़े होते रहते थे। इसलिए इनसे जुड़े कथ्यों को भी उनके नाटकों में आने में देर न लगी। क्योंकि इनके माध्यम से वे लोग अपने महानायकों का गुणगान कर सकते थे।

बेशक यह पूरी गतिविधि उनकी दिन–प्रतिदिन की दिनचर्या का एक सहज, स्वाभाविक हिस्सा थी, जिसका समय–समय पर अपने हिसाब से बदलाव होता गया। यह भी सही है कि वे लोग इस तथ्य से बिल्कुल अपरिचित और अनभिज्ञ थे कि वे जो कुछ कर रहे हैं वह नाटक ओर रंगमंच जैसी कोई बड़ी महान कला है, लेकिन, हम स्वयं तनिक निस्संग ओर तटस्थ होकर सोचें तो पाएँगे कि इसमें वह सब कुछ है जो आज हम नाटक में तलाश करते रहते हैं— एक सशक्त और जीवन्त कहानी, उस कहानी को आगे लेकर चलने वाले श्रेष्ठ अभिनेता, एक प्रदर्शन—स्थल जो पहले एक घेरे के रूप में आया और फिर घेरा टूटकर दो भागों में बँट गया, जैसा कि हम बाद में ग्रीक, रोमन, यहाँ तक कि शेक्स्पीयर के रंगमंच में भी देखते हैं। प्रस्तुति के तकनीकी पक्ष से जुड़े तमाम तत्व—घेरे के बीचों—बीच जलती आग और ऊपर आसमान में चाँद—रौशनी के नाम पर इससे ज्यादा नाटकीय और क्या हो सकता है। वेशभूषा के नाम पर पेड़ों की छाल, जानवरों की खाल, फूल, पत्ते, घास आदि। रूपसज्जा के नाम पर चूना, मिट्टी से रँगे चेहरे, और शायद जानवरों के सर मुखौटों

के रूप में और इन सबको देखने के लिए दिन भर के शिकार की थकान मिटाने ओर अपना मनोरंजन करने आया एक दर्शक—वर्ग।

यदि हम शाम को हाने वाली इस नाट्य—गतिविधि को मात्र मनोरंजन के रूप में देखेंगे तो हम उसकी सम्पूर्णता को नहीं समझ पाएँगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनोरंजन इस गतिविधि का पहला और सबसे बड़ा उद्देश्य था, लेकिन उससे भी ज्यादा इन नाटकों का मंचन उन बच्चों और युवाओं को शिकार की कला और उसकी बारीकियों को सिखाना भी था जो अभी शिकार पर नहीं जा सकते थे। दूसरे रूप में आदिम युग की इस गतिविधि को आज रंगमंच की दुनिया में देश—विदेश में प्रचलित ‘थिएटर इन एजुकेशन’ की अवधारणा का एक प्रारम्भिक (चाहे कितना ही झीना—सा ही क्यों न हो) प्रारूप कहा जा सकता है जहाँ रंगमंच जैसे माध्यम का इस्तेमाल अनिवार्य रूप से शिक्षा देने के लिए किया जाता है।

इससे भी ज्यादा स्वयं उस दर्शक—वर्ग के लिए भी यह प्रक्रिया कम महत्वपूर्ण नहीं थी, जो अभी कुछ देर पहले शिकार से लौटे थे और पूरी तरह से नाटक देखने की मनोभूमि के लिए तैयार होकर आते थे। उनका विश्वास था कि नाटकों में दिखाई गई कहानियों से प्रेरित ओर उत्साहित होकर जब हम अगली सुबह शिकार के लिए जाएँगे तो शाम को अपने साथ बहुत सा शिकार लेकर लौटेंगे। नाटक को देखने के इस प्रभाव को समाज—शास्त्रियों ने उस आदिम मानव के संदर्भ में इस प्रक्रिया को सिम्प्लेटिक मैजिक का नाम दिया है अर्थात् नाटक एक ऐसे जादू—टोने का प्रतीक माना जाता था जो उनके पक्ष में काम करेगा। क्या आज भी हम जादू—टोने को इसी अर्थ में नहीं लेते?

बेशक ट्रैजिडी का औपचारिक आविर्भाव कुल जमा ढाई—तीन हजार साल पहले ग्रीक रंगमंच में हुआ हो लेकिन उसके स्पष्ट संकेत आदिम युग के इन्हीं नाटकों में मिलने लगते हैं। कभी तो ऐसा नाटक भी प्रस्तुत किया गया होगा जिसमें शिकार के दौरान मुख्य शिकारी मारा गया हो? अब इससे ज्यादा ट्रैजिक या त्रासद क्षण और क्या हो सकता है कि जानवर के हाथों नायक की मृत्यु हो गई हो? हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि जब ऐसी घटनाएँ मंच पर प्रस्तुत की जाती होंगी तो

देखने वाले शिकारी समुदाय पर उसका क्या प्रभाव पड़ता होगा – एक तरफ़ यदि वे गहरे शोक और विषाद में डूब जाते होंगे तो दूसरी तरफ़ दूसरी सुबह शिकार में जीतकर आने की इच्छा और भी बलवती हो उठती होगी। ऐसा ही कुछ उन नाटकों के मंचन के समय भी होता होगा, जो दो क़बीलों की लड़ाई पर आधारित हों।

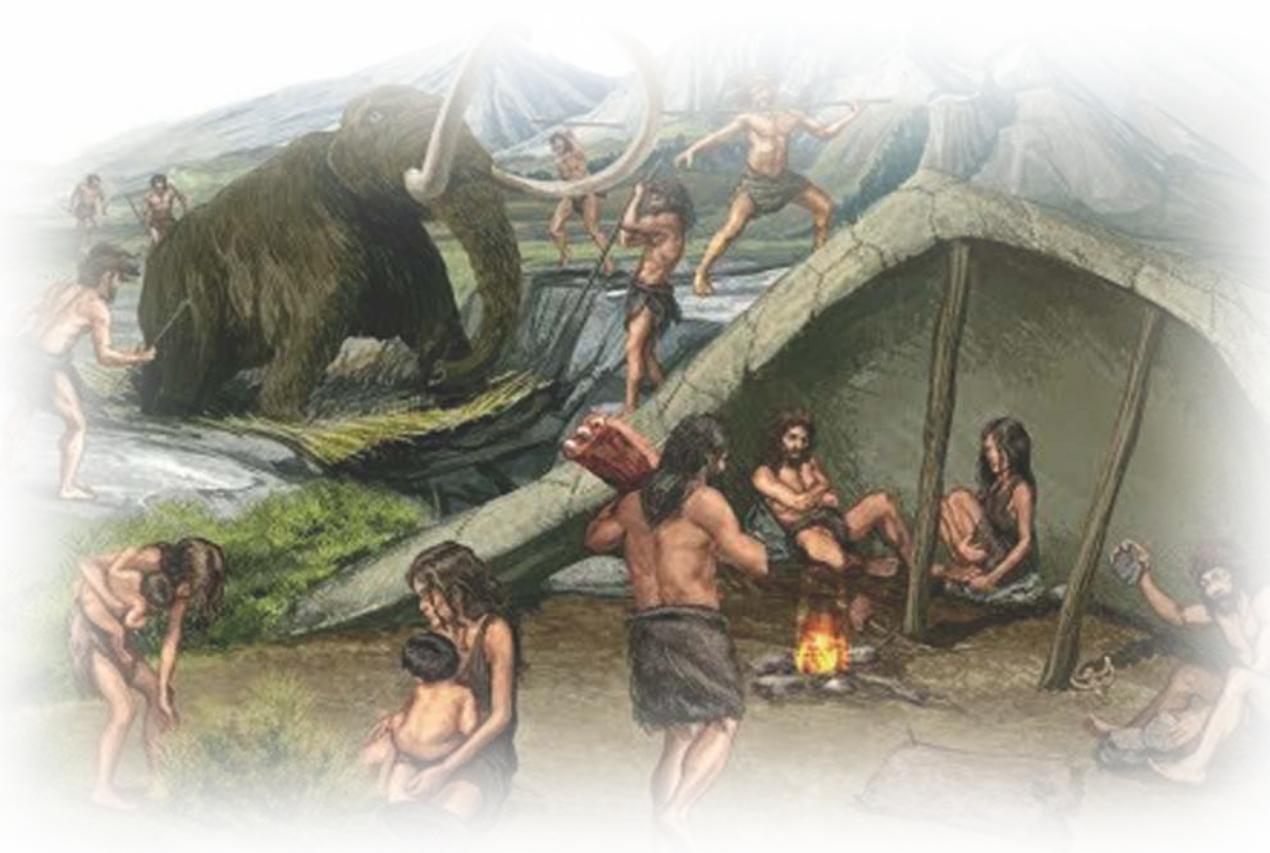
त्रासदी के साथ–साथ कॉमेडी या हास्य को आने में भी देर नहीं लगी। यदि ट्रैजिडी उनकी दिनचर्या में घटी घटनाओं की सहज परिणति थी तो कॉमेडी बेशक संयोग से ही सही, लेकिन आए बिना नहीं रही। एक दिन बहुत जोरों से बारिश हुई और सारे मैदान में कीचड़ ही कीचड़ हो गया। लेकिन शाम के समय नाटक को तो हर सूरत में प्रस्तुत किया जाना था। अब जैसे ही नाटक आरम्भ हुआ तो जानवर की भूमिका करने वाला अभिनेता तेज़ी से भागता हुआ आया और अचानक उसका पैर फिसल गया और वह धड़ाम से कीचड़ में जा धूँसा। फिर क्या था – दर्शकों में इस अप्रत्याशित घटना पर ज़बरदस्त अट्ठाहास हुआ। घटना तो एक बार होकर समाप्त हो गई लेकिन जानवर की भूमिका करने वाला अभिनेता तुरँत समझ गया कि ऐसी अप्रत्याशित हरकतों पर दर्शक खूब हँसते हैं, तो उसने जान–बूझकर ऐसी हरकतें अपने चरित्र–चित्रण में डालनी शुरू कर दीं। यह स्वयं सिद्ध है कि बेमेल क्रियाएँ दर्शकों में सहज ही हास्य की सृष्टि करती हैं। यदि ऐसा न होता तो आज सर्कस में जोकर की कलाबाज़ियाँ, स्लैप स्टिक कॉमेडी की क्या सार्थकता रह जाती? यों भी आदिम युग में ट्रैजिडी के साथ–साथ कॉमेडी का छोंक उन नाटकों की एक अनिवार्य प्रक्रिया थी क्योंकि एक जैसे नाटक देखते–देखते कितनी एकरसता हो जाती होगी। अपनी ही जीत का नाटक कितनी बार देखा जा सकता है? एक सीमा के बाद वह सपाट, बनावटी और एकरस लगने लगेगा। इसीलिए जब अपनी हार या मृत्यु का नाटक सामने आता है तो वह एकदम से झकझोर कर रख देता है। यही तर्क नाटकों में कॉमेडी को लेकर भी दिया जा सकता है। बाद में आने वाले नाटकों में विदूषक, फूल या ऐसे ही किसी हास्य चरित्र की उपस्थिति के पीछे भी शायद यही अवधारणा काम कर ही होगी कि नाटक को जीवन के सभी पक्षों को अपने साथ लेकर चलना चाहिए।

यह निष्कर्ष निकाल लेना मात्र अद्वस्त्य ही होगा कि यदि मानव के जीवन में सुबह से शाम तक शिकार और उसके बाद उस पर आधारित नाटकों का मंचन ही होता रहता होगा। यह तो मात्र एक पक्ष है जो सीधे–सीधे रंगमंच की कहानी से सम्बद्ध है, इसलिए सबसे पहले उसी की ओर ध्यान जाता है। इसके अलावा भी बहुत कुछ ऐसा था जो उसके साथ घटित हो रहा था लेकिन उसकी समझ से परे था। मसलन कभी भी अँधेरा छा जाता, कभी सूरज निकल आता, कभी आँधी आ जाती तो कभी तूफ़ान, कभी भूचाल और ऐसी ही न जाने कितनी प्राकृतिक आपदाएँ—ये सब ऐसी घटनाएँ थीं जिन पर उसका कोई वश नहीं था। वह इन्हें दैवी शक्तियों के रूप में देखता था, जो उससे कहीं बड़ी ओर अधिक शक्तिशाली थीं। फिर भी उसके मन में यह इच्छा बलवती होती चली गई कि मुझे इन शक्तियों को जीतना है, अपने वश में करना है ताकि मैं जब चाहूँ तो वर्षा हो, अँधेरा हो, अथवा आँधी आए। वश में करना है तो पहले इन शक्तियों को प्रसन्न करना होगा और प्रसन्न करने का सबसे आसान उपाय यही है कि उनकी पूजा की जाए। इस प्रकार आदिम युग में ही मनुष्य के अंदर पूजा का भाव जागृत हुआ। अभी कोई धर्म नहीं था, कोई सम्प्रदाय नहीं था, कोई देवी नहीं, कोई देवता नहीं – बस, एक अमूर्त शक्ति के प्रति श्रद्धा का भाव, पूजा का भाव; और इसी के साथ सामूहिक अनुष्ठान अथवा रिचुअल अथवा संस्कारों की शुरुआत हुई। अलग–अलग क़बीलों में सामूहिक पूजा–पाठ की शुरुआत हुई—बेशक वे एक समूह में रहते थे लेकिन तब भी पूरी तरह से सुरक्षित नहीं थे। जंगली जानवरों का डर तो था ही, इससे भी ज्यादा उन प्राकृतिक घटनाओं का, जिन्हें वे दैवी शक्तियों का प्रतीक मानते थे। यदि एक तरफ़ उनका भय था तो दूसरी तरफ़ यह विश्वास भी था कि यही शक्तियाँ हमारी रक्षा भी करेंगी। यह विश्वास ही वह तत्व था जिसने आदिम मानव के मन में अपने से अलग, अपने से बड़ी किसी शक्ति के अस्तित्व का संकेत दिया और उसने उसकी पूजा करना शुरू की। क्या आज भी हम पूजा–पाठ की ओर इसलिए अग्रसर नहीं होते कि हम किसी ऐसी शक्ति के सामने नतमस्तक हैं, जो कहीं हमसे परे है, हमसे बड़ी है और उसी के कारण हमारा अपना अस्तित्व मायने रखता है। आज से दो लाख साल पहले उस नितांत अबोध, भोले–भाले, अनपढ़, गँवार–आदि मानव के मन में यदि ऐसा भाव

उदय हुआ होगा तो कोई आशर्य नहीं!

तो, कुल मिलाकर कुछ ऐसी बनती है तस्वीर—आज से लगभग डेढ़—दो लाख साल पहले के आदि मानव की दिनचर्या की, जिसमें रंगमंच एक मुख्य गतिविधि के रूप में शामिल था। यह ध्यान रहे कि वह यह सब कुछ इसलिए नहीं कर रहा था कि वह रंगमंच जैसी किसी नई कला, विधा या माध्यम को जन्म दे रहा था — एक दिन एक आदमी ने अपने अनुभवों को कहानी के रूप में सुनाना शुरू किया, फिर एक दिन कोई उस अनुभव को दिखाने लगा, और उसमें बहुत से लोग शामिल होते गए। बहुत ही सहज, सरल और अनायास प्रक्रिया के तहत सब कुछ होता चला गया। बहुत बाद में जाकर उन लोगों ने बाकायदा नाटकों के मंचन की शुरुआत की। यह देखकर आशर्य होता है कि उनकी इस शुरुआती दिनचर्या में भी नाटक अथवा रंगमंच के सभी ज़रूरी तत्व मौजूद हैं— एक कहानी, कुछ अभिनेता, एक स्पेस, कुछ तकनीकी आवश्यकताएँ और अन्ततः: दर्शक। भले ही रंगमंच की सही तस्वीर कुल जमा तीन से पाँच हज़ार साल पहले हमारे सामने आती है, लेकिन पूछा जा

सकता है कि आदिम युग की यह रंगमंचीय गतिविधि इस तस्वीर से कहाँ अलग है? हम चाहे उसे रंगमंच का नाम न देना चाहें, लेकिन इतना निश्चित है कि इस दिनचर्या ने कुछ बातों को उसी समय निश्चित कर दिया था — रंगमंच जीवन की अनुकृति है। वह स्वयं में जीवन तो नहीं हो सकता। अनुकृति भी कभी हू—ब—हू नहीं हो सकती। अपने प्रस्तुति रूप में वह जीवन से प्रेरित होते हुए भी हू—ब—हू वही नहीं है। इस अर्थ में आदिम युग का नाटक भी खरा उत्तरता है — शिकार का नाटक है लेकिन सचमुच का शिकार नहीं है, शिकारी और शिकार भी सचमुच के नहीं हैं। वे जीवन की एक घटना का अनुकरण कर रहे हैं। यहाँ हम एक और सत्य से साक्षात्कार करते हैं कि मनुष्य में अनुकरण करने की प्रवृत्ति सहज होती है और यही रंगमंच जैसी कला का मूल तत्व है। आदि मानव के लिए यह सब कुछ कितना भी सहज संयोग या अवानक रहा हो लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं कि उसने आने वाली भावी पीढ़ियों के लिए एक ऐसी कला का आविष्कार कर दिया था, जिसे आज हम रंगमंच के नाम से जानते हैं और जो तब से लेकर आज तक जीवित है।



साक्षात्कार

“म्यूज़ियम की यात्रा घर से शुरू होती है”

—डॉ गौरी परिमू कृष्णन



साक्षात्कार्ता



साक्षात्कार दाता

(सिंगापुर स्थित 'इंडियन हेरिटेज सेन्टर' की पहली निदेशक डॉ गौरी परिमू कृष्णन से वरिष्ठ पत्रकार सुनन्दा वर्मा की विशेष बातचीत)



इंडियन हेरिटेज सेन्टर, लिट्ल इंडिया, सिंगापुर. चित्र सौजन्य: रॉबर्ट ग्रेग शैंड आर्किटेक्ट्स

(सिंगापुर स्थित 'इंडियन हेरिटेज सेन्टर' की पहली निदेशक डॉ गौरी परिमू कृष्णन से वरिष्ठ पत्रकार सुनन्दा वर्मा की विशेष बातचीत)

भारतीय समुदाय के दक्षिण पूर्वी एशिया से संपर्क के

इतिहास, और उसकी विविधता की कहानी सुनाता है सिंगापुर का इंडियन हेरिटेज सेन्टर (आई.एच.सी)। सिंगापुर के लिट्ल इंडिया क्षेत्र में स्थित इंडियन हेरिटेज सेन्टर वर्ष 2015 में खुला। इस सेन्टर में सिंगापुर के हर भारतीय समुदाय के बारे में बताया गया है और दिखाया

गया है कि इस क्षेत्र में और सिंगापुर में भारतीयों की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आईएचसी का उद्देश्य इस संस्कृति से परिचय कराना, उसका योगदान समझाना और पूर्वजों द्वारा रखी नींव पर आगे काम करने की भावना जगाना है। इस कहानी को लोगों तक पहुंचाने में डॉ गौरी परिमू कृष्णन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। डॉ गौरी परिमू कृष्णनइस काम से वर्ष 2007 में जुड़ी और आईएचसी के खुलने पर सेन्टर की पहली डायरेक्टर बनी। इससे पहले वह सिंगापुर स्थित एशियन सिविलाइजेशन म्यूज़ियम में 17 साल तक लीड क्यूरेटर रहीं। कला और विरासत के क्षेत्र में उनके योगदान पर सिंगापुर सरकार ने उन्हें प्रशस्ति पत्र (कमेन्डेशन मेडल) से सम्मानित भी किया है। डॉ गौरी परिमू कृष्णन ने वरिष्ठ पत्रकार सुनन्दा वर्मा से एक रोचक अंतरंग बातचीत में बड़ौदा में पढ़ने और पढ़ाने से लेकर सिंगापुर में इंडियन हेरिटेज सेन्टर स्थापित करने तक की यात्रा पर विस्तृत चर्चा की।

आप संस्कृति को कैसे पारिभाषित करती हैं ?

यह जटिल प्रश्न है और इसका कोई सरल उत्तर नहीं है।



इंडियन हेरिटेज सेन्टर के अंदर। चित्र सौजन्यः
इंडियन हेरिटेज सेन्टर

'संस्कृति' मेरे लिए सबसे पहले एक मूल्यांकन प्रतिमान है जिसे 'धर्म' कहते हैं पर यह अंग्रेज़ी शब्द के 'रिलीजन' का अर्थ नहीं देता वरन् मानवता की प्राकृतिक विशिष्टताओं को बताने वाला है। संस्कृति के दो पहलू हैं—पहला तो वह है जो जन्मजात या सहज कहा जा सकता है और जो हमारे डीएनए से पीढ़ी दर पीढ़ी

पहुंचता है और दूसरा अर्जित है जिसे हम अपने विद्यालयों में, समाज में पारस्परिक विचार विनिमय से और अपने सकल परिवेश से सीखते हैं। मैं संस्कृति को इस रूप में देखती हूँ।

पारंपरिक परिभाषा के अनुसार संस्कृति जीवन शैली है—आस्था और विश्वास, मान्यताएं, परंपराएं—धार्मिक रीति रिवाज से लेकर प्रदर्शन कलाएं, मौखिक कथाएं, इतिहास इत्यादि। यह व्यक्ति की पहचान का एक बड़ा हिस्सा हैं। अंततः जैसे—जैसे आप बड़े होते हैं, जो आप सोचते हैं और जैसा आप दूसरों के साथ आचरण करते हैं, वह आपके व्यवहार में यह झलकाता है।

अपने बचपन के बारे में बताएं, आपका रुझान इतिहास, कला और संस्कृति की तरफ कैसे हुआ?

मेरे माता पिता का और फिर बाद में पति और उनके परिवार का इस मायने में मुझ पर बहुत प्रभाव रहा। मेरी पैदाइश बड़ौदा (वडोदरा) में हुई और वहीं मैं पली बढ़ी। मेरी मां गुजराती हैं और पिता कश्मीरी। वे 1951 में कला सीखने के लिए श्रीनगर से बड़ौदा आए थे। मैं हमेशा यह कहती हूँ कि अगर मेरे बाबा ने पिता को भारत की स्वतंत्रता के कुछ ही साल बाद आर्ट्स की डिग्री की पढ़ाई के लिए अनुमति नहीं दी होती तो क्या होता। मेरे पिता विज्ञान के छात्र थे और पढ़ाई में बहुत तेज़ थे लेकिन वह विज्ञान आगे नहीं पढ़ना चाहते थे। वह कला पढ़ना चाहते थे। मेरे बाबा मेडिकल डॉक्टर थे उन्होंने मेरे पिता का हुनर और उत्साह कला के क्षेत्र में देखा और कहा कि ठीक है। फिर उन्होंने जहां भी कला में आगे पढ़ाई करने की संभावना थी, वहां के प्रॉस्पेक्टस मंगाए और बड़ौदा चुना। मेरे पिता ने पहली बार तब ट्रेन देखी जब वह बड़ौदा पढ़ाई करने आए। तो मैं काफ़ी पहले की इंटरकार्स मैरिज की प्रॉडक्ट हूँ। मैं और मेरी बहन दो संस्कृतियों और दो बैकग्राउंड में बड़े हुए। मेरे माता पिता दोनों आर्टिस्ट हैं, कलाकार हैं, और उन्होंने हमारी परवरिश पारंपरिक और आधुनिक तरीकों के मिश्रण से की। घर में हमेशा कला की बात होती थी, पिताजी पढ़ाते थे और मां का स्टूडियो घर पर था। नृत्य, संगीत, थिएटर... हम सभी कलाओं के परिचित वातावरण से थे। गर्मी की छुट्टियों में हम पुरातत्व महत्व के स्थल देखने जाते थे, हमारी इतिहास की क्लास तो

ऐसे ही घूमते घामते हो जाती थी। संग्रहालय या म्यूज़ियम जाना आम था। पूरा माहौल कला और सांस्कृतिक विरासत की बातों से भरा हुआ था। मैंने बहुत छोटी उम्र से भरतनाट्यम् सीखा, मेरी बहन ने गाना सीखा। मां का रुझान लोक संगीत और साहित्य में था तो हम उसमें भी थे। हमारी परवरिश इस तरह से हुई कि कभी कड़े नियम नहीं थे लेकिन हम जानते थे कि क्या सीमाएं हैं और हम उन्हें पार नहीं करते थे।

आपने कब तय किया कि आप भी कला और सांस्कृतिक क्षेत्र में जाएंगी।

सच कहूं तो बारहवीं के बाद मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं किस दिशा में जाऊं। भरतनाट्यम् के प्रति खिंचाव बढ़ता ही जा रहा था। संयोग से महाराजा सायाजीराव विश्वविद्यालय के परफॉर्मिंग आर्ट्स डिपार्टमेंट में कला क्षेत्र से आई प्रख्यात भरतनाट्यम नृत्यांगना श्रीमती अंजलि मेंढ़ ने बड़ौदा में भरतनाट्यम का बहुत अच्छा शैक्षिक सत्र स्थापित कर दिया था। दुर्भाग्य से उनका देहांत हो गया और उनकी जगह कला

क्षेत्र के प्रोफेसर सी. वी. चंद्रशेखर आए। वह बनारस के थे और उनकी भी बहुत तारीफ़ थी। तो मैंने भरतनाट्यम डिग्री करना तय किया। मैं अपने पिता से बहुत प्रभावित थी। उनके साथ रहते हुए, उनकी बातें सुनते हुए मैंने तय किया कि मैं आर्ट हिस्टरी भी पढ़ूँगी। तो यह तय हुआ कि मैं दोनों डिग्रियों के लिए पढ़ूँगी। इस तरह मैंने बीए, एम ए की पढ़ाई करी। पढ़ाई के दौरान ही मैंने नेट पास किया और टीचिंग असिस्टेंट के तौर पर विभाग में पढ़ाने लगी। पढ़ाने के साथ-साथ मैं पीएचडी पर भी काम कर रही थी। मेरे पिता मेरे गाइड, डीन और विभाग के अध्यक्ष थे।

पति से मेरा परिचय गुरु के द्वारा हुआ। मेरे गुरु को अपराजिता नाम की गीत रचना कि लिए एक दमदार आवाज़ की ज़रूरत थी। मेरे पति उस समय बड़ौदा में मास्टर्स की पढ़ाई कर रहे थे और कर्नाटक संगीत के गायक थे। गुरु ने उनको बुलाया और फिर वह हमारे ग्रुप का हिस्सा बन गए। बस सिलसिला आगे बढ़ा और फिर हमारी शादी हो गई। उनका परिवार दिल्ली में रहता था। मेरी सास उदार विचारों वाली थीं और उन्होंने



सिंगापुर के प्रधानमंत्री श्री ली सिएन लूंग (बीच) और मंत्री एस ईसवरन को इंडियन हेरिटेज सेन्टर की परमनेंट गैलरी का उदघाटन टूअर देती हुई सेन्टर डायरेक्टर डॉ गौरी परिमू कृष्णन, 2015. चित्र सौजन्य: इंडियन हेरिटेज सेन्टर

मुझसे कहा कि तुम पीएचडी का काम पूरा करो, उसे छोड़ो मत सिर्फ इसलिए क्योंकि तुम्हारी अब शादी हो गई है। तो मैंने पीएचडी पूरी की और करीब ढाई साल मैं बड़ौदी में नौकरी करती रही और वह दिल्ली में। पीएचडी पूरी करने के बाद मैं दिल्ली जाने का सोच रही थी लेकिन वहां नौकरी मिलनी मुश्किल थी। हम दोनों ही चाहते थे कि अब किसी एक जगह साथ रहकर गृहस्थी बसाएं।

आपका सिंगापुर आना कैसे हुआ ?

मेरे पति की बहनें सिंगापुर में रहती थीं तो हम सिंगापुर घूमने आए। यह वह समय था जब भारत और सिंगापुर के बीच सांस्कृतिक एमओयू थे और सिंगापुर कला के क्षेत्र में खुल रहा था। मेरी पीएचडी तब ही पूरी हुई थी तो मुझसे लोगों ने कहा कि तुम जा कर मिलो। उस समय सिंगापुर में सिर्फ एक ही म्यूज़ियम था—नैशनल म्यूज़ियम। तो मैंने नैशनल म्यूज़ियम के सीनियरडायरेक्टर को अपना सीधी भेजा। उनके पीए

का फोन आया कि आप इंटरव्यू के लिए आ जाइए। मैं तो घबरा गई, मैं इंटरव्यू के हिसाब से तो आई ही नहीं थी। मैंने उनसे कहा मैं आज तैयार नहीं हूं कल आ सकती हूं? जब मैं अगले दिन पहुंची तो मुझसे तीन लोग मिले जिनमें से एक बाद मैं मेरे बॉस बने। वे टोहरे थे कि मैं काम के लिए ठीक हूं या नहीं। उन लोगों ने मुझे बताया कि अगले साल भारत से एक बड़ी एकिज़्बिशन आने वाली है और उन्हें उस प्रॉजेक्ट को लीड करने वाला कोई चाहिए। मैं तो पढ़ाने का काम करती थी, क्यूरेशन या म्यूज़ियम का मुझे कोई अनुभव नहीं था, लेकिन शायद उन्हें मुझमें कुछ दिखा और लगा कि मैं वह काम संभाल सकती हूं। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उस पोजिशन के लिए अप्लाए करूं और इंटरव्यू दूं। ये बात 1992 के अंत 1993 की शुरुआत की थी और अगस्त 1993 में हम सिंगापुर काम करने आ गए। मेरा इंटरव्यू और नियुक्ति प्रक्रिया सिंगापुर की पब्लिक सर्विस कमिशन सिस्टम के अंतर्गत हुई।

आलमकारा: भारत के 5000 साल, रामायण:एक



भारतीय कला की पहली बड़ी प्रदर्शनी, आलमकारा: भारत के 5000 साल का सिंगापुर के प्रधानमंत्री श्री गो चॉक टॉग और श्रीमति गोह को क्यूरेटर्स टूअर देती हुई डॉ गौरी परिमू कृष्णन (बाएं), नैशनल म्यूज़ियम, सिंगापुर 1994. वित्र सौजन्य: एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम

जीवित परंपरा, नालंदा ट्रेल : भारत, चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में बौद्ध धर्म, जैसी कई प्रभावशाली एकिज़िविशन आपके नेतृत्व में हुई हैं। इनमें से कोई क्या आपके लिए ज्याद ख़ास थी ?

हर एकिज़िविशन ख़ास है, लेकिन एक विचार कहां तक आगे जा सकता है, क्या रूप ले सकता है इसका उदाहरण हैं नालंदा एकिज़िविशन। मुझे दफ़तर में एक दिन बताया गया कि एक डेलिगेशन नालंदा जा रहा है, हमने तुम्हें चुना है तो तुम जाने के लिए अपने काग़ज़ तैयार करलो। मैंने तैयारी की, फ़्लाइट ली और जब होटल पहुंची तो कहा गया कि सुबह आठ बजे रिपोर्ट करना है। तब मुझे एहसास हुआ कि प्रतिनिधि मंडल में तो बहुत वरिष्ठ लोग हैं जिनका नेतृत्व डॉ बालाजी सदासिवन करेंगे जो विदेशी मामलों के वरिष्ठ राज्य मंत्री तथा सूचना और संचार तथा कला मंत्री (मीका) हैं। मुझे तब उनके बारे में बहुत पता नहीं था, मैं सोच ज़रूर रही थी कि वह कैसे होंगे। गाड़ियों का लंबा काफ़िला था, साथ में अनुरक्षक थे, सबसे आगे मंत्री की गाड़ी थी, मैं उस समय सबसे जूनियर थी इसलिए जिस गाड़ी में मैं थी वह सबसे पीछे थी। करीब एक घंटे की यात्रा के बाद काफ़िला रुका और हमें बताया गया कि चाय का ब्रेक है। मैं सोच रही थी कि मंत्री जी चाय पीने के लिए आएंगे कि नहीं, तभी देखा कि वह आए और हमारे साथ सड़क किनारे ढाबे पर बैठ कर उन्होंने उन्हीं कप से चाय पी। वहीं नालंदा पर चर्चा शुरू हुई। मुझे जितना मालूम था उसी के आधार पर मैं उनसे बात कर रही थी। उसके बाद तो यूं हुआ कि हम जिस भी ऐतिहासिक स्थल जाते, वह वहां पहुंच कर मेरा इंतज़ार करते। उनकी गाड़ी सबसे आगे और मेरी सबसे पीछे। जैसे ही मेरी गाड़ी रुकती मुझसे कहा जाता, भागो मंत्री जी तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं। फिर वह बहुत नम्रता से मुझे लोगों से मिलवाते और उन्हें बताते कि हमारे पास भी क्यूरेटर हैं। राजगीर, बोधगया, नालंदा में हमने कई शिल्प कृतियां देखी। हर दिन मंत्री जी से उनके बारे में चर्चा भी होती। एक दिन मंत्री जी ने पूछा, “तुम क्या सोचती हो?” मैंने कह दिया कि हां हम इसपर एक एकिज़िविशन कर सकते हैं। तो बोले, फिर काम शुरू करो। राजगीर इलाके में श्वेन् त्साङ् के नाम पर एक बड़ा हॉल है जहां हम भी गए। वहां एक बड़ी तांबे की प्लेट की फ़ोटो थी। मंत्री जी ने मुझसे कहा कि क्या हम

पता कर सकते हैं यह कहां है। मैंने कहा, हां। मैं आपको यह इसलिए बता रही हूँ क्योंकि मुझे लगता है कि अगर कुछ होना होता है तो सारी शक्तियां मिल कर उसे पूरा करती हैं। तो डेलिगेशन वापस दिल्ली आया। मैंने पहले से मुझियम से अनुमति ले ली थी कि मैं दो दिन और रुक कर दिल्ली के नैशनल म्यूज़ियम के साथियों से मिलकर आऊंगी। जब मैं नैशनल म्यूज़ियम गई तो वहां की क्यूरेटर, रीता से मिली। मैंने उससे पूछा कि वह तांबे



एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम की भारतीय गैलरी की क्यूरेटर और कॉन्सेप्च्युलाइज़र डॉ गौरी परिमू कृष्णन पूर्व राष्ट्रपति, स्व श्री एस आरनाथन और श्रीमति नाथन को क्यूरेटर्स टूअर देते हुए, 2003. चित्र सौजन्यः एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम

की प्लेट कहां होगी? तो उसने वहीं अपनी मेज़ के पास नीचे दिखा कर कहा— यहां मिलेगी ! यह प्लेट हमारी नालंदा एकिज़िविशन का स्टार पीस थी। हमने एकिज़िविशन की पूरी कहानी उसी के चारों ओर बुनी— तीन साधुओं की यात्रा, सेन्ट्रल एशिया का कनेक्शन, सिल्क रोड, नालंदा की शिक्षा प्रणाली, किस तरह वह नालंदा से आगे गई, इत्यादि। जिस तरह से ये सब हुआ मानो बुद्ध स्वयं मुझे रास्ता दिखा रहे हों। ऐसा नहीं है कि हर काम आसान था, हर दिन चुनौतियां सामने आती थीं, जिन लोगों ने कलेक्शन देने का वायदा किया था उनमें से कई बाद में पीछे हट गए, आखिरी समय तक हमारा कलेक्शन तय नहीं हो पा रहा था, हर रात मैं मन में बुद्ध से प्रार्थना कर कहती थी, आप इसकी रक्षा कीजिए। दिन ब दिन, धीरे धीरे रास्ता खुलता था और हम लक्ष्य के कुछ पास पहुंचते थे। यह अनुभव बहुत ही अनोखा था। मैं कुछ अजीब सी स्कॉलर हूँ मुझमें श्रद्धा और विश्वास बहुत है, मैं जो भी करती हूँ पूरी श्रद्धा और

विश्वास के साथ करती हूं।

इंडियन हेरिटेज सेन्टरकी शुरुआत कैसे हुई? किस आधार पर और कैसे आपने उसका काम शुरू किया?

इंडियन हेरिटेज सेन्टर सिंगापुर सरकार के नेतृत्व और सिंगापुर के भारतीय समुदाय के सहयोग से बना। इस विचार की शुरुआत कल्यरल पॉलिसी पर 1989 में आई ऑगटेनचियोंग रिपोर्ट से हुई थी। जब मैं इससे जुड़ी तब दो मंत्री—डॉ बालाजी सदासिवन और श्री एस इसवरन इस नेतृत्व को लीड कर रहे थे, प्रेरणा स्त्रोत उस समय के राष्ट्रपति श्री एस आरनाथन थे। हुआ यूं कि साल 2007 में एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम में मैंने जो कलेक्शन डेवलप किये थे उसके कैटलॉग का रिलीज़ राष्ट्रपति श्री एस आरनाथन ने इस्ताना (सिंगापुर के राष्ट्रपति भवन) में किया। वह एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम आते थे, मेरा काम जानते थे। फिर उन्होंने मुझे एक दिन कॉफी पर बुलाया और कहा इसके बारे में सोचो, एक पेपर लिखो। फिर एक कमेटी बनी जिसे श्री गोपीनाथ पिल्लई लीड कर रहे थे। इस कमेटी में एम्बेसेडर केसव पनी, प्रो टैन टाइ याँग जैसे कई विशिष्ट लोग थे जो शैक्षिक समुदाय, कूटनीति, समुदायों नेता थे। यह कमेटी बहुत ही अधिकार सशक्त थी और हमें किस दिशा में जाना है, यह तय करती थी।

हमें निर्देश था कि 'मेक श्योर नो वन इज़ लेफ्ट बिहाइंड'—यानी इसमें किसी को हमें छोड़ना नहीं है, सिंगापुर में।

भारतीय समुदाय के हर ग्रुप को हमें फ़ीचर करना है, और दूसरा; नोट हमेशा पॉसिटिव होना है। इस सेन्टर से हम लोगों को बताना चाहते थे कि यह पूरा क्षेत्र जो साउथ एशिया कहा जाता है वह बहुत सक्रिय है और हम चाहते हैं कि लोग इसकी सम्पन्नता, सर्वग्राही शक्ति और विविधता को समझें। इस सेन्टर से हम ये भी दिखाना चाहते थे कि इस क्षेत्र और सिंगापुर में भारतीयों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सेन्टर आने वाले इस संस्कृति से परिचित हों, उसका योगदान समझें और पूर्वजों द्वारा रखी नीव पर आगे काम करें ये हमारी मंशा थी।

कमेटी ने हमें ऐसे परिवारों और संस्थाओं के नाम बताए



सिंगापुर के पूर्व राष्ट्रपति, स्व श्री एस आरनाथन (दाएं), डॉ गौरी परिमू कृष्णन द्वारा लिखित एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम का भारतीय कलेक्शन रिलीज़ करते हुए। साथ में एम्बेसेडर एट लार्ज प्रो टॉमी को, 2007, चित्र सौजन्य: एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम

जिनके काम और योगदान की सिंगापुर की कहानी में अहम भूमिका रही है। हमसे कहा गया कि हम इनसे मिले, इन्हें जाने और उनसे मिली जानकारी के आधार पर काम करें। जब मुझे ये काम सौंपा गया तो मेरा पहला विचार ये था कि हमें क्रान्तिलॉजिकली काम करना है और हर इंस्टिट्यूशन, डिसिप्लिन, व्यवसाय के भारतीयों को फ़ीचर करना है। बाद में कुछ क्रिटिकल अकैडमिक्स ने कहा कि हमने इंडियन हेरिटेज सेन्टर में माइग्रेशन की कहानी और प्लानटेशन मज़दूरों की व्यथा कथा पर ज्यादा नहीं किया, लेकिन मेरी राय में वह मलेशिया की कहानी का ज्यादा हिस्सा है ना कि सिंगापुर की। हमने तथ्य के तौर पर यहां उनके बारे में बताया है लेकिन नेगेटिव लाइट में नहीं दिखाया।

म्यूज़ियम की संकल्पना का आधार स्मृतियां होती हैं। हर चीज़ आर्काइव से शुरू होती है। अब जब मैं सोचती हूं तो मुझे लगता है कि आर्ट हिस्टॉरियन की मेरी समझ और सोच आधार रही। आर्ट हिस्टॉरियन हमेशा विजुअल रेफ़रेंस से काम करता शुरू करता है, पहले देखता है कि क्या है, फिर सिद्धांत ढूँढता है और फिर ढांचा तैयार कर दोनों को उसमें बैठाता है। तो इंडियन हेरिटेज सेन्टर के विजुअल रेफ़रेंस पुरानी फोटो, एल्बम, स्क्रैपबुक, अख़बार की कटिंग, दस्तावेज़, अनुभवों के मौखिक दस्तावेज़ थे और इनमें से ही ये सेन्टर बना। एशियन सिविलाइज़ेशन म्यूज़ियम के अनुभव से मैं साउथ एशिया—साउथ ईस्ट

ऐशिया परस्पर संबंध, प्राचीन ऐतिहासिक सांस्कृतिक मूल्यों के संचरण महत्व को जानती थी तो हमने कहा कि हम एक सेक्शन में इसके बारे में पहले बात करेंगे।

इंडियन हेरिटेज सेन्टरके पीछे आपकी कितने लोगों की टीम थी और उसके आगे क्या मुख्य चुनौतियाँ थीं।

हमारी पूरी टीम में दस से ज्यादा लोग नहीं थे। हम सबने कई काम किए, इसलिए ये जो तैयार हुआ, जो बना, वह ऐसा बना है। हमें गैलरी का हर इन्च, हर सेगमेंट, हर एलिमेंट पता है। चुनौतियाँ भी कई थीं—जितनी जगह में हमें ये तैयार करना था वह अपनेआप में काफ़ी कम थी। वहाँ एक्स कवेटर का पहुंचना मुश्किल था, कभी फोन आता था कि पड़ोस के लोग रोक रहे हैं, कभी कुछ। लोगों का हमें साथ मिला लेकिन ऐसा नहीं की आलोचना नहीं हुई। किस भाषा में कहां साइनेज हो इस पर लोगों की तीखी प्रतिक्रिया थी, हमारे डायरेक्टर ने इस बारे में कम्प्यूनिटी के लोगों को संबोधित किया, बताया क्या है, क्यों है। लेकिन जैसा मैंने पहले कहा, जब पॉलिटिकल विल या राजनीतिक इच्छा होती है तो काम का रास्ता निकल ही आता है—कुछ समझौता करके और कुछ संवेदनशील हो कर। इस काम से मुझे मानव स्वभाव और सामाजिक परिवेश में काम करने के बारे में बहुत कुछ सीखने को मिला। अभी तक का मेरे करियर का ये सबसे चुनौती पूर्ण काम रहा है।

आईएचसी में टेक्नालॉजी का काफ़ी इस्तेमाल है। आपने उसको कैसे बुना?

मैंने टेक्नालॉजी को साथ लेकर हर जगह काम किया है। ऐशियन सिविलाइजेशन म्यूज़ियम और आईएचसी में टेक्नालॉजीका एक परत की तरह इस्तेमाल किया गया है। अगर आप उससे परिचित नहीं हैं तो आप उसे भूल कर भी यहां का आनंद ले सकते हैं। सारी जानकारी आपके लिए उपलब्ध है। लेकिन अगर आपको टेक्नालॉजी से परहेज़ नहीं है तो आप उसके साथ खेल सकते हैं। यहां जब स्कूल के बच्चे टूअर पर आते हैं तो उन्हें बहुत मज़ा आता है क्योंकि उन्हें उस माहौल में एक ढूबने या ध्यानस्थ होने का सा अनुभव होता है। मैंने हमेशा चाहा कि बच्चों को म्यूज़ियम में मज़ा आए, उनकी

जिज्ञासा रहे और वह कुछ नया सीखकर जाएं। हमने कई प्रोग्राम और एक्टिविटीज़ उनको ध्यान में रखकर बनाई। आपको ये ध्यान में रखना चाहिए कि मेरी टीम के अधिकतर सदस्य मुझसे बीस साल छोटे थे, तो मेरी कार्य शैली का सम्बन्ध तो युवा वर्ग से रहा ही और फिर ये बात 2012 की थी जब फोन पर दो उंगली से बड़ा छोटा करना आम बात नहीं थी। मेरा डिज़ाइनर मुझसे कहता था 'टूफ़िंगर एक्सपीरिएंस' देंगे यहाँ आने वालों को। तो समय के हिसाब से हमने कई नए अनुभव लाने की कोशिश की और उसको पेश करने का अलग आनंद था। यह सारी चीज़े म्यूज़ियम के अनुभव को आज से जोड़ती हैं।

आईएचसी में अपनेलोक कला और शास्त्रीय / परम्परागत कला को साथ रखा है। इसके पीछे क्या सोच है?

इसके पीछे मेरी आर्ट हिस्टॉरिकल ट्रेनिंग, रामायण पर मेरा शोध और समय की मांग है। तो एक तो इसकी शुरुआत इससे होती है कि जब आप नया सेटअप कर रहे हैं, कलेक्शन ही ना हो, तो जो आपके पास है, जो भी थोड़ा बहुत है, उससे आप ज्यादा से ज्यादा करने की कोशिश करते हैं। उस समय ये वर्ग भेद— हाय आर्ट और लो आर्ट नहीं होता क्योंकि कला तो कला है। कला अभिव्यक्ति है।

80 और 90 के दशक में हर स्तर पर संस्कृति की व्यापकता को समझा जा रहा था। भारत में कपिला वात्सयायन, पुपुल जयकर जैसे लोग लोक कला को



अर्लीं पायनीयर्स गैलरी— आर्काइवल तस्वीरों और साझा की गई यादों से प्रेरित। चित्र सौजन्य: इंडियन हेरिटेज सेन्टर

मान का दर्जा दिलाने के लिए काम कर रहे थे। उनके काम और विचारों से मैं परिचित थी। मेरी राय में लोक कला को सम्मान दिलाने में पुपुल जयकर का बहुत बड़ा योगदान है, उनकी एक बहुचर्चित किताब 'द अर्दन ड्रम' है। भारत में लोक कलाओं की बहुत प्रदर्शनियां होने लगी थीं। तो मैं जानती थी कि लोक कला को कलैसिकल कला के साथ देखना और बराबर का दर्जा देने के पीछे क्या विचारधारा है।

जब मैं रामायण पर शोध कर रही थी तब मैं पॉला रिचमंड की 'मैनीरामायणास' किताब से काफ़ी प्रभावित थी। इसमें रामायण के हर प्रारूप को बराबर के दर्जे का बताया गया है क्योंकि हर समुदाय अपनी सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार इस महा कथा को समझता और अपनाता है। उसमें कोई एक वर्णन ज़्यादा या कम अच्छा नहीं है।

तो इस पृष्ठभूमि के साथ मैंने सोचा था कि जब मैं क्यूरेट करूंगी तो मैं कला में श्रेणी भेद नहीं करूंगी, साथ



शिल्पकार श्री राम सुतार (बीच) के साथ डॉ गौरीपरिमू कृष्णन जिनके द्वारा बनाए राष्ट्रीय नेताओं के बस्त भारतीय सरकार ने इंडियन हेरिटेज सेन्टर को 2014 में भेट किए। चित्र सौजन्यरूप इंडियन हेरिटेज सेन्टर

रखूंगी, ये मेरा क्यूरिटोरियल स्टाइल है। मेरी दूसरी क्यूरिटोरियल दृष्टि है कि मैं हर मीडिया को जक्स्टापोज़ करती हूं—साथ रखती हूं—पैटिंग हो, स्कल्पचर हो, डेकोरेटिव आर्ट हो, मैं सबको मिलाकर देखा करती हूं। क्योंकि लक्ष्य ये दिखाना है कि भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धांत सभी रूपों को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करते हैं।

जब आप किसी म्यूज़ियम जाती हैं तो आपका ध्यान किन चीज़ों पर जाता है ?

यह अच्छा सवाल है। जब मैं म्यूज़ियम जाती हूं तो मैं उस शहर, नगर, या जगह की खास चीज़ देखना चाहती हूं। जैसे जब मैं बंगलौर के म्यूज़ियम गई तो मैं कर्नाटक हेरिटेज की चीज़ें देखना चाहती थी, आइकोनोग्रैफी देखना चाहती थी, वो जो मैंने पहले कहीं और नहीं देखी, असाधारण धरोहर के रूप में देखना चाहती थी। मुझे वहां जाकर, संग्रहालय की हालत देखकर बहुत बुरा लगा। इसके अलावा क्योंकि मैं म्यूज़ियम संबंधित काम करती हूं मेरा ध्यान वहां की लाइटिंग, रखरखाव का स्तर, साइनेज और किस तरह से लोग वहां यह सब देखते हैं, पर जाता है। मुझे लोगों को देखकर दुख भी होता है और गुस्सा भी आता है क्योंकि वह वहां की चीज़ों पर कम ही ध्यान देते हैं—उनका ध्यान और समय सेल्फी लेने और कॉरिडोर में भागने में जाता है। म्यूज़ियम की यात्रा घर से शुरू होती है। आप सोच कर, पढ़ कर, समझ कर जाइए, कि आप जा कहां रहे हैं, और जब वहां से वापस आइए तो कुछ नया सीख कर आइए, तब आपका जाना सार्थक होगा।

आजकल आप किन चीज़ों में व्यस्त हैं ?

मैं अब स्वतंत्र क्यूरेटर हूं, कम्यूनिटी हेरिटेज के दो और प्रॉजेक्ट्स पर काम कर रही हूं और जब संभव होता है म्यूज़ियम और इंडिविजुअल्स को भी कनसल्ट करती हूं। कमिशन्ड किताबें लिख रहीं हूं और अभी अपने पिता पर एक फलिसिटेशन वॉल्यूम प्रिन्टर को भेज रही हूं। मैं नान्यांग टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी में अगली पीढ़ी के म्यूज़िम प्रोफेशनल्स को हर सेमेस्टर म्यूज़ियमस्टडीज़ और क्यूरेटरशिप पढ़ाती हूं यह मेरा तीसरा सेमेस्टर है।

हिन्दी भाषा और उसका स्वरूप

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा



भूमिका

भरी जन सभा में हिन्दी दिवस के अवसर पर एक देशभक्त, हिन्दी प्रेमी, समाज सेवी नेता जी धारा प्रवाह बोल रहे थे और कह रहे थे कि हिन्दी की जननी संस्कृत जैसी सम्पन्न विश्व वन्दित भाषा है, जिसके बोलने वालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है, यह हजारों साल से भारत में बोली जा रही है और यह भारत की संविधान स्वीकृत राष्ट्रभाषा है। उस जनसभा में सामान्य लोग भी थे और विशिष्ट लोग भी। सभी हिन्दी की महिमा का गान कर रहे थे और नेता जी के संबोधन की, उनके विस्तृत ज्ञान की प्रशंसा हो रही थी।

हिन्दी दिवस के अवसर पर विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने असेम्बली में आज हिन्दी के बारे में छात्रों को जानकारी देने का मन बनाया था और यह दायित्व विद्यालय की हिन्दी शिक्षिका को दिया था। हिन्दी शिक्षिका को यह भी निर्देश था कि वह इस सम्बन्ध में प्रधानाध्यापक के लिए भी एक संक्षिप्त नोट तैयार करें जिसके आधार पर वे भी छात्रों को हिन्दी के बारे में कुछ कह सकें। हिन्दी शिक्षिका ने भी बहुत कुछ नेता जी के भाषण की तरह ही हिन्दी के बारे में कई महत्वपूर्ण सूचनाएं दी, हिन्दी का गुणगान किया। हिन्दी दिवस का अवसर था। असेम्बली के बाद अल्पाहार की व्यवस्था थी। सभी प्रसन्न थे। उन्हें नई अनेक सूचनाएं हिन्दी के बारे में आज मिली थी यथा हिन्दी की जननी संस्कृत जैसी सम्पन्न भाषा है, हिन्दी भारत की संविधान स्वीकृत राष्ट्रभाषा है, हिन्दी सम्पूर्ण भारत की भाषा तो ही वह विश्व में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली देश की राष्ट्र भाषा है, आदि आदि। मुझे लगा कि इन छात्रों की हिन्दी के सम्बन्ध में उतनी ही जानकारी है जो उन्हें अपने विद्यालय में हिन्दी शिक्षक से मिली है।

नेता जी के भाषण में या विद्यालय की असेम्बली में जो विद्यालय अंग्रेजी माध्यम वाला, सब सुविधाओं से सुसज्जित अधिक आय वर्ग से आने वाले छात्रों के लिए ही विशेष रूप से बना है, शहर में अनुशासन के लिए जिसका नाम है और जहाँ हिन्दी की कक्षा के बाहर हिन्दी बोलने पर छात्रों को दण्ड भी मिलता है वहाँ भाषण के बीच में या बाद में भी किसी को वक्ता से कुछ पूछना उसका अपमान मान लिया जाता है। छात्रों को शिक्षक की बातों का विरोध अनुशासन भंग का कारण माना जाता है। संयोग ऐसा कि नेता जी के भाषण में और विद्यालय के हिन्दी दिवस समारोह में मैं भी उपस्थित था।

मैं एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय का हिन्दी का अध्यापक हूँ और एम. ए. की कक्षा में भाषा विज्ञान पढ़ाता हूँ। वर्ष की पहली कक्षा में जब छात्रों से प्रश्न करता हूँ कि हिन्दी किसे कहते हैं? हिन्दी की परिभाषा क्या है, तो उनके उत्तर भी लगभग वैसे ही होते हैं जैसे नेता जी के थे या अंग्रेजी माध्यम वाले सुविधा सम्पन्न विद्यालय के असेम्बली में हिन्दी शिक्षिका के भाषण की तरह छात्र यही कह पाते हैं, हिन्दी हमारी मातृभाषा है, संस्कृत से उसका जन्म हुआ है विश्व में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली देश की राष्ट्र भाषा है, आदि आदि। मुझे लगा कि इन छात्रों की हिन्दी के सम्बन्ध में उतनी ही जानकारी है जो उन्हें अपने विद्यालय में हिन्दी शिक्षक से मिली है।

मुझे लगता है कि अपने देश की हिन्दी जैसी प्रमुख भाषा के बारे में प्रामाणिक जानकारी दी जा सके तभी हिन्दी का भला हो सकता है। अतिरंजित और अशुद्ध जानकारियाँ हिन्दी के मान को बढ़ाने वाली नहीं वरन्

कम करती है। आईये, आज हिन्दी के बारे में हम थोड़ी चर्चा कर लें, क्योंकि यही मेरे छात्र आगे जाकर विद्यालय में शिक्षक बनेंगे और संभव भी है कि प्रभावशाली नेता बनें और हिन्दी के बारे में उन्हें जनसभा में कुछ कहना पड़े। हिन्दी नीति के निर्धारक बनें।

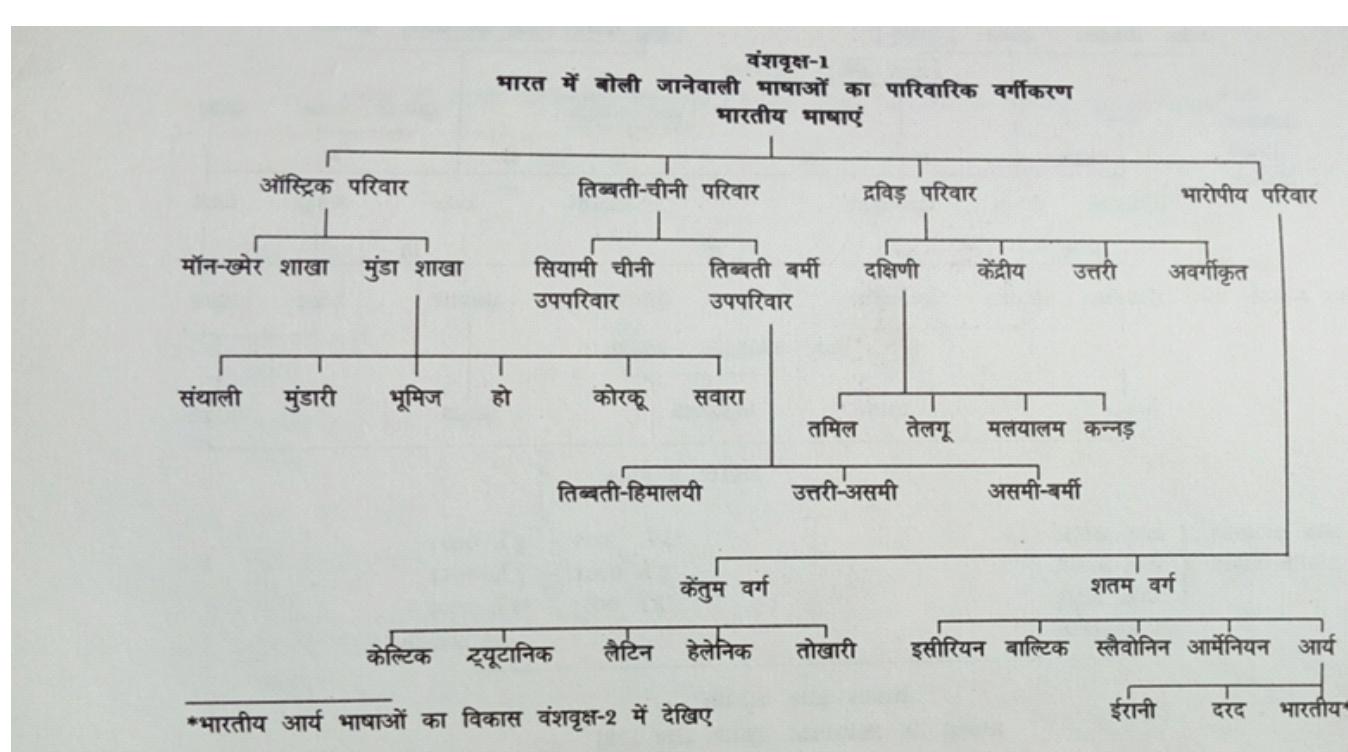
यदि किसी व्यक्ति के बारे में आप कुछ जानना चाहें तो आप उसका नाम, उसका पता पूछते हैं पूछते हैं, उस के माता पिता के बारे में और उसके परिवार वालों के बारे में पूछते हैं, उसकी आयु के बारे में प्रश्न करते हैं, उसके काम के बारे में, उसके संबंधों के बारे में जानकारी लेते हैं, उसका स्वभाव और उसकी रुचि के बारे में प्रश्न करते हैं। किसी भाषा के बारे में जानना लगभग उसी प्रकार है जैसे किसी व्यक्ति के बारे में जानना। तो आइये थोड़ा हम हिन्दी से अपना परिचय बढ़ायें।

हिन्दी का परिवार – हिन्दी की जननी संस्कृत या कोई और भाषा

पहला प्रश्न तो यही है कि हिन्दी का परिवार क्या है? हिन्दी की जननी कौन है? क्या हिन्दी की जननी संस्कृत है? आप तो जानते ही हैं कि माँ और दादी या

नानी में अन्तर है। दादी पिता की जननी (माँ) और नानी माँ की जननी (माँ) है। जननी और माँ में भी अन्तर है। कृष्ण की जननी देवकी थी— जन्म देने वाली होने के कारण और माँ थी यशोदा—कृष्ण का लालन पालन करने के कारण। इसी प्रकार संस्कृत से हिन्दी का जन्म हुआ यह कहना उसी प्रकार है जैसे दादी का पोते को या नानी का नाती को जन्म देना। हिन्दी का जन्म संस्कृत से नहीं अपभ्रंश से हुआ है। संस्कृत से पाली का जन्म हुआ, पाली से प्राकृत का जन्म हुआ, प्राकृत से अपभ्रंश का और अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म हुआ। इस प्रकार हिन्दी और संस्कृत में कई पीढ़ियों का अन्तर है। इस प्रकार हिन्दी की जननी संस्कृत न होकर अपभ्रंश है। इस क्रम पर यदि आप ध्यान दें तो संस्कृत हिन्दी की पर दादी की भी माँ है। अंग्रेजी में संस्कृत को हिन्दी की great grand mother's mother कहेंगे, न कि जननी।

अब प्रश्न यह है कि हिन्दी का परिवार क्या है। हिन्दी के परिवार की अन्य भाषाएँ कौन हैं? हिन्दी अपभ्रंश, प्राकृत, पाली और संस्कृत एक परिवार की भाषाएँ हैं पर विश्व की भाषाओं में इस परिवार की क्या स्थिति है, यह भी हमें समझना चाहिए?



चित्र एक : भारत के भाषा परिवार

संसार की समस्त भाषाओं को भाषा वैज्ञानिकों ने 12 विश्व भाषा परिवारों में बांटा हुआ है। भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं जो चार भाषा परिवारों की भाषाएँ हैं और ये भाषा परिवार हैं— भारत—यूरोपीय भाषा परिवार, द्राविड़ परिवार, तिब्बती चीनी परिवार और ऑस्ट्रिक या मुंडा परिवार।

इनमें सबसे बड़ा भाषा परिवार भारत और यूरोप की भाषाओं को लेकर बना है जिसे भारत—यूरोपीय भाषा परिवार कहते हैं जिसके अन्तर्गत भारत और यूरोप की अनेक भाषाएँ आती हैं। हिन्दी भारत यूरोपीय (भारोपीय) परिवार के आर्य उपपरिवार की भारतीय शाखा की एक आधुनिक भाषा है।

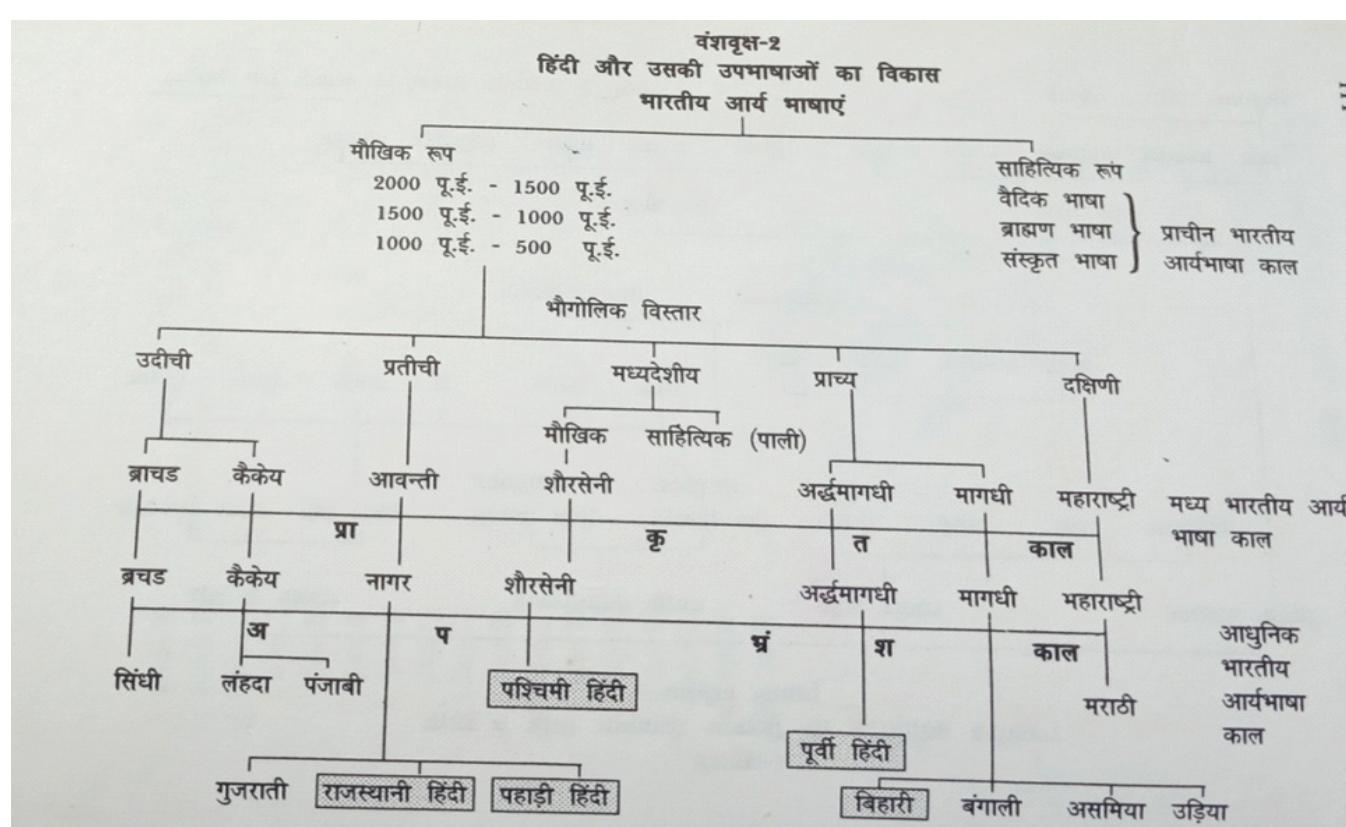
चित्र एक : भारत के भाषा परिवार

हिन्दी की आयु

काल क्रम के अनुसार आर्य भाषाओं को निम्न तीन प्रमुख कालों में बाँट सकते हैं। प्राचीन आर्यभाषा, मध्यकालीन आर्य भाषा और आधुनिक आर्य भाषा काल। प्राचीन आर्य

भाषा काल का समय (2000 ई.पू.—500 ई.पू.) मध्यकालीन आर्य भाषा का समय (500 ई.पू.—1000 ई.) और आधुनिक आर्यभाषा का समय (1000 ई.से आज तक) है। हिन्दी आधुनिक आर्य भाषा काल की भाषा है या प्राचीन अपप्रंश से प्रभावित जो हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाएँ हैं उनमें सिद्धो, नाथ तथा जैन मुनियों की रचनाओं की गणना है। मुनि राम सिंह की पाहुड़ दोहा, बनारसी दास की अर्धकथा, नरपति नाल्ह की बीसलदेव रास इसी युग की रचनाएँ हैं। हिन्दी का मध्यकाल हिन्दी का स्वर्ण युग है जिसमें कबीर, तुलसी, सूर और मीरा ने रचना की। इसी युग में भक्तिकाल, रीति काल तथा आधुनिक युग आज तक की रचनाएँ हैं। अभी हिन्दी के समझिये पाँच सौ वर्ष और शेष है और पाँच सौ वर्षों में हिन्दी का स्वरूप इतना बदल जाएगा कि उसे समझने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा जैसा आज हमें तुलसीदास, सूर आदि की रचनाओं को समझाने के लिए करना पड़ता है। आधुनिक आर्य भाषा काल को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं।

आधुनिक आर्य भाषा काल (1000 ई.—2020 ई.)



चित्र दो : हिन्दी का उद्घव और विकास

(क) प्राचीन अपभ्रंश से प्रभावित रूप (1000—ई. -1500 ई.)

(ख) मध्ययुग (1500 ई. - 2000 ई.)

आधुनिक आर्यभाषा काल के मध्य युग में अनेक प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिक रूप विकसित हुए। इसी युग में अवधी, ब्रज और मैथिली को साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी का जन्म 1000 ई. के लगभग से मानना चाहिए जिसका प्रारंभिक रूप प्राचीन अपभ्रंश से प्रभावित था। इस प्रकार हिन्दी की वर्तमान आयु लगभग एक हजार वर्ष है।

चित्र दो : हिन्दी का उद्भव और विकास

हिन्दी भाषा का क्षेत्र

अब प्रश्न यह है कि हिन्दी भाषा का क्षेत्र कहाँ है? वह कहाँ मातृभाषा के रूप में और कहाँ संपर्क भाषा के रूप में बोली जाती है? हिन्दी भारत के एक बड़े भू भाग की भाषा है। वह देश के 12 प्रदेशों की मातृभाषा है—उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, हिमाचल, हरियाणा, तथा केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़, दिल्ली और अंडमान और निकोबार। बहुत से लोग अरुणाचल प्रदेश को भी हिन्दी भाषी प्रदेश मानते हैं। यदि हिन्दी क्षेत्र को हम रेखांकित करना चाहें तो कह सकते हैं कि 'हिन्दी उत्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में रायपुर और खण्डवा तक, पूर्व में मिथिला और भागलपुर के जिलों से लेकर पश्चिम में बाड़मेर, बीकानेर और जैसलमेर तक बोली जाती है।'

हिन्दी किस भाषा का नाम है?

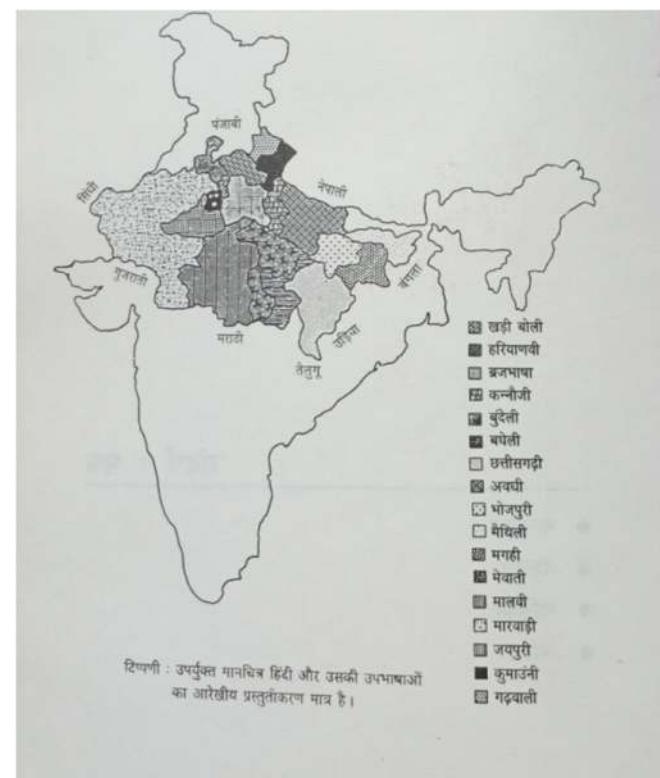
जब हम हिन्दी के क्षेत्र की बात करते हैं तो हिन्दी की बोलियों या हिन्दी की उपभाषाओं की बात आ जाती है जिनकी समष्टि को हिन्दी कहा जाता है। हिन्दी की सत्रह बोलियाँ हैं जिन्हें सुविधा की दृष्टि से समझाने के लिए हमने पाँच उप-भाषाओं में बाँट दिया है और जिनके अन्तर्गत आने वाली बोलियाँ मिलकर हिन्दी भाषा की सज्जा से अभिहित होती हैं। ये बोलियाँ हैं (क) राजस्थानी हिन्दी— 1. मारवाड़ी, 2. मेवाड़ी या मेवाती, 3.

जयपुरी और 4. मालवी (ख) पूर्वी हिन्दी— 5. अवधी, 6. बघेली और 7. छत्तीसगढ़ी (ग) पश्चिमी हिन्दी— 8. खड़ीबोली, 9. ब्रज, 10. बुन्देली, 11. कन्नौजी और 12. हरियाणवी (घ) बिहारी— 13. मैथिली, 14. मगही और 15. भोजपुरी (ड) पहाड़ी हिन्दी— 16. गढ़वाली और 17. कुमाऊनी। ये सत्रहों भाषाएँ हिन्दी हैं और इनमें लिखी साहित्यिक कृतियाँ हिन्दी की रचनाएँ मानी जाती हैं। यही कारण है कि मारवाड़ी में लिखने वाली मीरा, अवधी में लिखने वाले गोस्वामी तुलसीदास और मलिक मुहम्मद जायसी, ब्रज भाषा के कवि सूरदास, नन्ददास, बिहारी लाल, मैथिली के विद्यापति और खड़ी बोली के प्रेमचंद, जय शंकर प्रसाद, महादेवी हिन्दी के रचनाकार माने जाते हैं और हिन्दी के पाठ्यक्रम में, चाहें वे किसी भी कक्षा के हों, पाठ्यक्रम में उनकी रचनाएँ पढ़ाई जाती हैं।

चित्र तीन : हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ और उनके भाषायी क्षेत्र

हिन्दी की शैलियाँ

हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू हिन्दी की प्रधान शैलियाँ हैं।



चित्र तीन : हिन्दी की ग्रामीण बोलियाँ और उनके भाषायी क्षेत्र

हिन्दी से तात्पर्य उस हिन्दी से है जिसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता है और उर्दू वह है जिसमें अरबी फारसी शब्दों की बहुलता है। उदाहरण के लिए यदि आप कहे यह काम बहुत जटिल है तो लोग कहेंगे कि यह शुद्ध हिन्दी है। यदि आप कहें यह काम बहुत मुश्किल है तो लोग कहेंगे आप उर्दू बोल रहे हैं। सच्चाई यह है कि एक भारतवासी जो हिन्दी क्षेत्र का रहने वाला है वह हिन्दी के इन दोनों रूपों को भली भाँति समझता है। हिन्दुस्तानी हिन्दी का वह रूप है जिसमें हिन्दी में संस्कृत शब्दों के तदभव रूपों का प्रयोग होता है और साथ ही जिसमें अरबी, फारसी अंग्रेज़ी के उन शब्दों का प्रयोग होता है जो हिन्दी में घुल मिल गए हैं और अपना विदेशी पन खो चुके हैं। महात्मा गांधी हिन्दी के इसी रूप के पक्षधर थे जिसे हिन्दुस्तानी कहा जाता है और जिसे सब समझते हैं।

हिन्दी की प्रान्तीय और विदेशी शैलियाँ

हिन्दी की अनेक प्रान्तीय शैलियाँ भी हैं जो हिन्दी के सीमान्त प्रदेशों में बोली जाती हैं और जिनमें निकटवर्ती प्रान्त की अपनी भाषायी विशेषताएँ भी आ गयी हैं—हैदराबाद की हिन्दी को हैदराबादी हिन्दी और दक्षिणी हिन्दी कहा जाता है। कोलकाता बंगाल प्रान्त की राजधानी है और वहाँ की भाषा बाँग्ला है पर कोलकाता में अनेक हिन्दी भाषी मारवाड़ी भी हैं जिनकी बोलचाल की भाषा में हिन्दी के साथ बाँग्ला भाषा के शब्द भी आ गए हैं और इसे कलकत्तिया हिन्दी नाम दिया गया है। महाराष्ट्र की राजधानी मुम्बई में अनेक हिन्दी भाषियों के होने से वहाँ हिन्दी का एक नया रूपविकसित हुआ है जिसे वहाँ के लोग बम्बइया हिन्दी या टपोरी भी कहते हैं। मद्रास के लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को मद्रासी हिन्दी नाम दिया गया है।

भारत के अतिरिक्त फ़ीज़ी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी के नए रूप विकसित हुए हैं। फ़ीज़ी में बोली जाने वाली हिन्दी को फ़ीज़ी हिन्दी/फ़ीज़ीबात, सूरीनाम में बोली जाने वाली हिन्दी सरनामी/सरनामी हिन्दी/सरनामी हिन्दुस्तानी कही जाती है जबकि दक्षिण अफ्रीका में बोली जाने वाली हिन्दी को वहाँ के भारतीयों ने नैटाली नाम दिया है।

जब एक भाषा क्षेत्र विस्तार होता है तो उसके अनेक रूप

बन जाते हैं पर सबमें पारस्परिक बोधगम्यता बनी रहती है और सब एक दूसरे भाषा रूप को समझते हैं।

हिन्दी कितने लोगों द्वारा बोली जाती है ?

मातृभाषा के रूप में हिन्दी भाषा भाषियों की संख्या भारतीय जनगणना 1981 के अनुसार सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या का 42.88 प्रतिशत है। विदेश में बसे हुए हिन्दी भाषा भाषियों की संख्या आज कितनी है इसके निश्चित आंकड़े आज उपलब्ध नहीं हैं पर विदेश में बसे हुए भारतीय चाहे किसी भी भारतीय भाषा के बोलने वाले हो सबके बीच हिन्दी ही सेतु का काम करती है। हिन्दी विदेश में बसे हुए भारतीयों के लिए राष्ट्रीय अस्मिता का काम भी करती है और सभी भारतीय हिन्दी भाषा बोलते और समझते हैं। इसके अतिरिक्त मॉरीशस, फ़ीज़ी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में अवधी, भोजपुरी और खड़ी बोली के रूप में हिन्दी सुरक्षित है। फ़ीज़ी में तो हिन्दी संविधान स्वीकृत भाषा है। विश्व में तत्वतः हिन्दी भाषा भाषियों की यदि संख्या देखी जाए तो हिन्दी विश्व में दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। जहाँ यह आँकड़े कम दिखते हैं वहाँ जनसंख्या गणना में राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी को हिन्दी से अलग कर दिया गया। यदि इनके आँकड़े हिन्दी में जोड़ दिए जाएँ तो हिन्दी की संख्या बढ़कर फिर उतनी हो जाती है।

भारत के संविधान के अनुसार हिन्दी क्या देश की राष्ट्रभाषा है ?

भारतीय संविधान में हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में उल्लेख कहीं भी नहीं है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता स्वतन्त्रता आन्दोलन में देश के नेताओं ने देश को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए दी थी, क्योंकि हिन्दी ही देश की एकमात्र ऐसी भाषा थी जो देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाती थी। स्वतंत्रता आन्दोलन को देश व्यापी बनाने के लिए आवश्यकता इस बात की थी कि कोई ऐसी भाषा चुनी जाए, जिसके माध्यम से स्वाधीन भारत का उदघोष सारे देश में फैल सके। गुजरात के महात्मा गांधी, कश्मीर के जवाहर लाल नेहरू, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, बंगाल के रबीन्द्रनाथ ठाकुर, पंजाब के लाला लाजपत राय और दक्षिण के चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि अनेक नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया।

हिन्दी स्वतंत्रता आन्दोलन में शंखनाद की भाषा बनी। महात्मा गाँधी ने कलकत्ता में 27 दिसंबर 1917 के अपने भाषण में देशवासियों को संबोधित करते हुए घोषणा की— ‘आज की पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की और मुँहें और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें।’ पर 12, 13, 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा में जब भाषा को लेकर बहस हुई उसमें हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं राजभाषा के रूप में घोषित हुई। भारत के संविधान के भाग 17 के अनुच्छेद 343(1) में ‘संघ की राजभाषा हिन्दी तथा लिपि देवनागरी मानी गई।’ भारतीय संविधान में कहीं भी राजभाषा शब्द की परिभाषा या व्याख्या नहीं दी गई। संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी के व्यापक प्रचार प्रसार के सम्बन्ध में जो व्यापक निर्देश दिए गए हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि हिन्दी के राष्ट्रीय स्वरूप की बात संविधान निर्माताओं के मन में थी और इसीलिए यह निर्देश दिया गया कि ‘संघ का कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रचार प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे।’ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344(1) और अनुच्छेद 351 में अष्टम अनुसूची में भी 14 प्रमुख भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी को भी रख दिया गया। बाद में भाषायी कोण को छोड़कर इस अष्टम अनुसूची का विस्तार होता गया और हिन्दी की उपभाषाओं— मैथिली को भी जोड़ दिया गया। हिन्दी की बोलियों की समृद्धि और उन की वोट शक्ति को देखते हुए अन्य हिन्दी की बोलियों के प्रवेश की बात उठने लगी, जिससे परिणामतः हिन्दी के संख्या बल से इनके कम हो जाने से हिन्दी की संख्या शक्ति कम होने लगी और हिन्दी जिसमें सत्रह बोलियाँ थी वह अब खड़ी बोली के रूप में प्रस्तुत होने लगी।

हिन्दी की अपनी लिपि कौन सी है? क्या देवनागरी के स्थान पर रोमन लिपि को अपनाना ठीक होगा?

अगर किसी दुकान पर लगे बोर्ड पर लिखा हो ‘बोम्बे हेयर कटिंग सलून’ और कोई पूछे किस भाषा में लिखा है तो अधिकाँश लोग कहेंगे, हिन्दी में और अगर लिखा हो Mathura Mishthanna Bhandar और आप पूछे कि बोर्ड पर किस भाषा में लिखा है तो लोग कहेंगे अंग्रेज़ी में। आपको क्या लगता है?

सच पूछा जाए तो हेयर कटिंग सलून अंग्रेज़ी में लिखा है

और मथुरा मिष्ठान भण्डार हिन्दी में। पर लोग लिपि को भाषा मान लेते हैं, इसलिए यह गलती होती है।

लिपि और भाषा में अन्तर होता है। कोई भी भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है, पर हर भाषा की अपनी लिपि होती है जिसमें उस भाषा की सभी ध्वनियाँ ठीक से लिखी जा सकती हैं। हिन्दी की अपनी लिपि देवनागरी है जिसमें हिन्दी की ध्वनियाँ सर्वोत्तम रूप में लिखी जा सकती हैं। हिन्दी यदि रोमन लिपि में लिखी जायेगी तो लड़का या तो ड/, ल/, या र/ से लिखा जाएगा और लड़का/ललका/लरका पढ़ा जाएगा। ‘कढ़ी’ ‘करी’ या ‘कली’ बन जायेगी और हिन्दी सुनने वाला दुविधा में पड़ जाएगा।

इसलिए भाषा की जो अपनी लिपि होती है उसी लिपि में भाषा की ध्वनियाँ सही रूप में पढ़ी और बोली जा सकती है। हिन्दी की लिपि देवनागरी है जिसे विद्वानों ने विश्व की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि माना है। ऐसी देवनागरी लिपि हिन्दी के लिए सर्वथा उपयुक्त लिपि है। संस्कृत, मराठी और नेपाली भी देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती हैं।

निष्कर्ष

देर आये दुरुस्त आये, पुरानी कहावत है। जब मौका मिले अपनी गलती व्यक्ति को सुधार लेनी चाहिए। हिन्दी के बारे में जो भ्रामक जानकारियाँ हैं, यदि हम उसे ठीक कर लें तो आपको लोग समझदार कहेंगे।

अन्ततः: यदि आप हिन्दी को पारिभाषित करना चाहें तो कह सकते हैं कि ‘हिन्दी भारत यूरोपीय (भारोपीय) परिवार के आर्य उप-परिवार की भारतीय शाखा की एक आधुनिक भाषा है जो लगभग गत एक हजार वर्षों से उत्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में रायपुर और खण्डवा तक, पूर्व में मिथिला और हागालपुर के जिलों से लेकर पश्चिम में बाड़मेर, बीकानेर और जैसलमेर तक अनेक साहित्यिक और ग्रामीण रूपों में बोली जाती है। हिन्दी का शब्द समूह प्रधानतया भारतीय आर्य भाषा का शब्द समूह है और यह मुख्यतया देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी भारत गणराज्य की राजभाषा है।’

राजभाषा हिंदी का स्वरूप- चुनौतियां और संभावनाएं

प्रदीप कुमार अग्रवाल



प्रस्तुत आलेख में मुख्य रूप से राजभाषा के रूप में हिंदी के उस भाषिक स्वरूप पर चिंतन करने का प्रयास किया गया है जो उसके सहज विकास में सदैव एक बड़ी बाधा बना रहा है और साथ ही अन्य चुनौतियों एवं संभावनाओं तथा हिंदी के क्षेत्र में नए उभरते अवसरों पर भी चर्चा की गई है।

यदि हम विषय पर एक नजर डालें तो कोई विरला ही होगा जिसे इस विषय की गहन जानकारी न हो। लंबे समय से यह देखने में आया है कि राजभाषा के रूप में प्रशासन के काम में एक स्वभाविक भाषा का नहीं, बल्कि एक तरह की निष्ठाण अनूदित भाषा का प्रयोग ज्यादा हुआ है। अंग्रेजी जानने वालों की बात तो दूर, हिंदी जानने वाले भी इस भाषा के बवंडर में गोते खाते रहे हैं और हिंदी के नाम पर अनचाहे ही विलष्टता का लेबल चर्पा हो गया है। आज ज़रूरत है तो इसमें एक ऐसा बदलाव लाने की, इसे एक ऐसा मौलिक स्वरूप प्रदान करने की, जो सरल सहज और ग्राह्य हो। आम जनता को राजभाषा का वर्तमान रूप नहीं, बल्कि जन-भाषा का सरल स्वरूप ही हिंदी के नज़दीक लाएगा और इससे सुविधापूर्वक जोड़ेगा।

राजभाषा के स्वरूप की चुनौती

इस बात की जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही



थी कि राजभाषा के स्वरूप में बदलाव लाया जाना चाहिए क्योंकि जिस अधकचरी और असहज भाषा का प्रयोग होता आ रहा है, वो किसी आम आदमी की भाषा तो नहीं है। भाषा के जिस स्वरूप का समाज से सरोकार हीं न हो, ऐसी अनगढ़, कृत्रिम और विलष्ट भाषा को भला कौन अपनाना चाहेगा। दूसरी बात यह कि जब 'भाषा बहता नीर' की उकित का बारंबार हवाला दिया जाता है तो भला इसे बंधनों में बांधने की क्या आवश्यकता है। शब्द चाहे किसी भी भाषा से आ रहे हों, वे हिंदी के शब्दकोश को ही समृद्ध बना रहे हैं। क्या हम चाहते हैं कि हिंदी का हश्च भी देवभाषा संस्कृत सा हो जिसके व्याकरण के नियमों और शब्द आगम के प्रतिबंधों ने उस भाषा का प्रवाह रोककर उसे एक उथले तालाब में तब्दील कर दिया है।

यदि हम अंग्रेजी भाषा की लोकप्रियता और इसकी प्रसिद्धि बढ़ने का राज़ इसके शब्द-भंडार में मानते हैं (जिसमें फ्रैंच, स्पेनिश जर्मन, उर्दू हिंदी और न जाने कितनी ही भाषाओं से लिए गए सैकड़ों-हजारों शब्द शामिल हैं तो भला हिंदी में कुछ विदेशी शब्दों या कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों ओर देशज शब्दों के आ जाने से भला कौन सा आसमान टूट पड़ेगा, इससे हिंदी कमजोर होने के बजाय समृद्ध और सुदृढ़ ही होगी। हिंदी की लोकप्रियता में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। अब आवश्यकता है तो राजभाषा के रूप में इसकी लोकप्रियता को बढ़ाने की जिसके लिए यदि इसे एक सरल भाषिक स्वरूप ओर सहज शैली का अमली जामा पहनाने का प्रयास किया जाना जरूरी है। इसकी आज के परिवेश में एक महती आवश्यकता है।

राजभाषा हिंदी के समक्ष प्रमुख चुनौतियां

जनभाषा हिंदी को राजभाषा हिंडी या प्रशासनिक हिंदी के रूप में 'प्रतिष्ठित' किए हुए छह दशक से अधिक का समय हो गया है। इसे एक विडंबना ही कहा जाएगा कि इस प्रतिष्ठा को अर्जित करने के बाद हिन्दी शनैः शनैः अपनी जनप्रियता का आधार खोकर प्रशासनिक स्तर पर एक अनचाही विवशता के रूप में परिवर्तित होती गई और अहिन्दीभाषियों की बात तो दूर, हिन्दीभाषियों में से भी अधिकांश ने इससे विमुखता दर्शाते हुए भावनात्मक नाता तोड़ना श्रेयस्कर समझा। चिंतन और राजनीति के स्तर पर इसके भले ही कुछ भी कारण रहे हो किंतु व्यवहार के स्तर पर हिंदी को राजभाषा के रूप में जिन प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, उनका संक्षिप्त उल्लेख यहां नीचे किया गया है:

1. लॉर्ड मॅकाले द्वारा तैयार की गई तथा दिनांक 07 मार्च 1835 को लागू की गई अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली, जिसके चलते देश में बड़े पैमाने पर 'बाबुओं का उत्पादन' आरंभ किया गया और शिक्षित पीढ़ी को अंग्रेजी को आधार बनाकर राष्ट्रीयता की मुख्यधारा से दूर रखने का प्रयास किया गया।
2. "फूट डालो और राज करो" के राजनैतिक मूल मंत्र के कारण एकता का आभास न होने से हिंदी को

"क्षेत्रीयता का अभिशाप" भुगतना पड़ा।

3. राजभाषा के रूप में हिंदी में प्रचुर शब्द-संपदा एवं विशिष्ट शैली के अभाव का मिथ्या दोषारोपण।
4. लोचपूर्ण एवं दोहरी नीतियों का समानांतर प्रवाह।
5. "रोटी की गारंटी" के रूप में हिंदी की अक्षमता और अंग्रेजी की अपेक्षा उसमें दीनता-हीनता का भाव पनपना।

भले ही आरंभ के कुछ वर्षों में राजभाषा हिंदी में एक मानक स्वरूप का अभाव था और कार्यालयीन प्रयुक्तियों के अंग्रेजी वाक्यांशों के समतुल्यों एवं परिभाषिक शब्दों के समुचित पर्याय-चयन में असमंजसपूर्ण स्थिति थी किंतु बाद के वर्षों में, इस स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार के लिए सक्रिय एवं व्यावहारिक प्रयास आरंभ किए गए। सरकारी एवं विभागीय स्तरों पर एकरूपता के लिए पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावलियों का निर्माण किया गया। स्वयंसेवी हिंदी संस्थाओं ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण सहायक सामग्री का सृजन किया। फिर भी, कुछ ऐसी चुनौतियां बनी रहीं जिन्हें व्यवहार में मानसिक संकोचशीलता की श्रेणी में रखा जा सकता है। इनका उल्लेख यहां नीचे किया जा रहा है:

1. अंग्रेजी को 'ज्ञान का द्वार या 'प्रतिष्ठा का प्रतीक'





समझा जाता है।

2. हिंदी भाषियों में बड़ी सीमा तक हिंदी के प्रति समर्पण का अभाव है।
3. बुनियादी स्तर पर यथा नियुक्ति, प्रशिक्षण व पदोन्नतियों के मामलों में हिंदी को प्रर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता अर्थात् हिंदी की अनिवार्यता प्रायः "नहीं" के बराबर है।
4. अक्सर यह मानकर चला जाता है कि पत्र को 'सामने वाला' या 'पाने वाला' हिंदी में होने पर ठीक से समझ नहीं सकेगा और पत्रोतर मिलना कठिन होगा।
5. एक धारणा यह भी है कि हिंदी पत्रों को पर्याप्त महत्व की दृष्टि से नहीं देखा जाता।
6. संदेश को सही रूप में व्यक्त करने में हिंदी की संप्रेषण क्षमता व शब्द सामर्थ्य को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है।
7. शब्दावलियों के प्रयोग से तथा अंग्रेजी के हिंदी अनुवाद से बचना भी इस संकुचित प्रवृत्ति में सहायक है।
8. अंग्रेजी में पूर्वनिर्मित पत्रों, वाक्यांशों, टिप्पणी आदि को बारम्बार दोहराना बहुत सरल होता है जबकि हिंदी में उनकी मूल रचना करना अपेक्षाकृत कठिन होता है।
9. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क कढ़ाने के लिए केवल अंग्रेजी को ही आधार माना जाता है व समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं अध्ययन का स्रोत अंग्रेजी को ही समझा जाता है।
10. हिंदी में लिखने, टाइप करने/आशुलिपि की गति अंग्रेजी की अपेक्षा कम मानी जाती है जबकि हिंदी

का फोनेटिक वर्जन/यूनिकोड आने के बाद यह समस्या काफी हद तक सुलझ गई है।

11. हिंदी में लिखते समय अपनी वर्तनी संबंधी अशुद्धियों के पकड़े जाने व उसके प्रारूप में सुधार होने का भय अधिक रहता है।
12. हिंदी अधिकारियों की भाषिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ होने के कारण वह प्रायः विलष्ट शैली की हिंदी लिखने में अभिरुचि रखते हैं।
13. राजभाषा नीति को पर्याप्त गंभीरता से नहीं लिया जाता है क्योंकि इसमें उल्लंघन की दशा में किसी दंड का विधान नहीं है।
14. ऐसी धारणा है कि बढ़ते कंप्यूटरीकरण व अन्य यंत्रों के प्रयोग से हिंदी के विकास की गति धीमी हुई है जबकि समस्याओं के निदान भी पीछे-पीछे आते जा रहे हैं।
15. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजभाषा हिंदी को प्रतिष्ठित करने की दिशा में गंभीर प्रयास नहीं हुए हैं जो कि एक अधूरा सत्य है।

यह उल्लेखनीय है कि राजभाषा हिंदी में अपनी बेहतर सूजन-क्षमता के बावजूद भी अभिव्यक्तियों या प्रारूपों को अंग्रेजी में लिखना अकारण ही एक मानसिक बाध्यता बना हुआ है। आखिर ऐसा क्यों है? क्या वास्तव में राजभाषा की उपयोगिता को व्यवहार में ढाला गया है अथवा लक्ष्यों की पूर्ति के लिए दिखावा करते हुए आंकड़ों के चमत्कार पैदा कर इसकी उन्नति का खोखला ढोल ही बजाया जा रहा है? इसका निर्धारण करना आवश्यक है। इस हेतु मुख्यतः काम में लाए जा रहे उपायों पर दृष्टिपात करने से सहज ही निम्न तथ्य उभरते हैं:-

1. कर्मचारियों को राजभाषा हिंदी सिखाने के लिए हिंदी कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं जिन पर काफी व्यय होता है जबकि अधिकतर कर्मचारी इसे 'आनंद गोष्ठी' या 'सवेतन अवकाश' के रूप के देखते हैं।
2. राजभाषा संबंधी बैठकों में निर्णय अवश्य लिए जाते हैं किंतु उनके समुचित अनुपालन हेतु सही रूख अपनाने में उच्चाधिकारी हिचकिचाते हैं।

3. अधिकतर बड़े हिंदी सम्मेलनों, संगोष्ठियों व अन्य कार्यक्रमों में हिंदी के प्रति "श्रद्धांजलि" या "स्तुति" का रुख ही अधिक रहता है ओर यदि कोई महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखा भी जाता है तो लंबे अरसे तक विचाराधीन रहकर वह प्रायः लुप्त हो जाता है।
4. हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान, हिंदी टंकण/आशुलिपि प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु कर्मचारियों को नामित तो अवश्य किया जाता है किन्तु इनमें से कुछ प्रशिक्षणार्थी अनिच्छा से इनमें प्रवेश लेते हैं तथा कुछ इसे प्राप्त सुविधाओं का लाभ उठाने का माध्यम मानते हैं और प्रशिक्षित कर्मचारियों की सेवाओं का उपयोग भी राजभाषा हिंदी की प्रगति के लिए उचित रूप से नहीं हो पाता है।
5. हिंदी पत्राचार/कार्य की प्रगति के लिए छपे-छपाए फार्मां, निर्धारित प्रारूपों, कोडों, पर्चियों आदि को हिंदी में लिखने/भरने पर अधिक बल दिया जाता है जबकि मूल रूप से हिंदी पत्र-लेखन आदि अधिकतर उपेक्षित ही रहता है इसलिए अधिकांश प्रशासनिक रिपोर्ट, कार्यवृत्त, निरीक्षण/जांच आदि से संबंधित रिपोर्ट केवल अंग्रेजी में बनती है और उन पर आगामी कार्रवाई भी अंग्रेजी में की जाती है।
6. हिंदी में कार्य को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से अंग्रेजी प्रारूपों, पत्रों व टिप्पणों आदि का हिंदी में अनुवाद कराया जाता है जो कि भाषा की दृष्टि से सर्वाधिक सौचनीय स्थिति है क्योंकि इसमें कृत्रिमता व अधकचरेपन का अंश झलकता है।
7. हिंदी संबंधी प्रतियोगिताओं, समारोहों व पुरस्कार योजनाओं ने भी हिंदी के प्रयोग के प्रति "सांत्वनापूर्ण" रुख जताने वाले वातावरण का निर्माण किया है, जिससे उपजी सहानुभूति हिंदी की सक्षमता झलकाने की बजाय विकलांगता की परिचायक है।
8. अंतिम किंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण हिंदी अधिकारियों, हिंदी लिपिकों व अनुवादकों की नियुक्ति है, जिसे प्रत्येक संस्था के साथ में दी गई



बैसाखी से कम नहीं कहा जा सकता और जिसके होते वह सक्षम होकर भी लंगड़ा कर चलने को मजबूर है, इस कार्य की सीधी जिम्मेदारी तय की जानी चाहिए।

आज भाषिक संक्रमण की एक अनिवार्य स्थिति है जो तब तक चलेगी, जब तक कि सभी स्तरों पर सीधे हिंदी भाषा में राजभाषा—लेखन आरंभ नहीं होता। राजभाषा नियम 3(3) के अंतर्गत जारी किए जाने वाले कागजातों के द्विभाषिक रूप में बनाए जाने की अनिवार्यता के कारण द्विभाषिकता की स्थिति भी एक सीमा तक बराबर बनी रहेगी और अनुवाद का कार्य भी निरंतर होता रहेगा यह जरूरी है कि अनुवाद की प्रक्रिया को व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए और उसमें कला एवं कल्पनाशीलता का सामंजस्य रखते हुए सरलता के सिद्धांतों का ज्यादा से ज्यादा अनुप्रयोग किया जाए जैसे कि:—

1. शब्दों का चयन इस प्रकार किया जाए कि वह विषय को अर्थध्वनि देने, शब्दावली की एकरूपता और स्पष्ट अभिव्यक्ति की दृष्टि से सक्षम हो।
2. अन्य भाषाओं के (भारतीय या विदेशी) वह शब्द जो आम प्रचलन में है, उन्हें ज्यों का त्यों अपना लिया जाए अर्थात उनका किसी प्रकार का अनुवाद न किया जाए।
3. शब्द का चयन करते समय भाषिक बोझ कम करने की दृष्टि होनी चाहिए और परंपरा से चले आ रहे शब्दों को संस्कृति से जुड़ा जानकर प्रचलित शब्दों को अपनाने से हिचकिचाना नहीं चाहिए।
4. हिंदी शब्दों का भाषिक स्वरूप कामकाज की

भाषिक जरूरतों को पूरा करने वाला हो और संपर्क के स्तरों पर निश्चित संदर्भ में अपेक्षित अर्थ देता हो तथा सुबोध हो।

5. तकनीकी शब्द यानि विभिन्न उपकरणों, मशीनों, व्यवस्थाओं आदि के अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों ले लिया जाए अथवा हिंदी शब्द की जानकारी होने पर अंग्रेजी शब्द को कोष्ठक में लिख दिया जाए।

राजभाषा के प्रयोग के लक्ष्य में उपेक्षा की नियति ओर संकोच की प्रवृत्ति दोनों ही समान रूप से आड़े आ रही है, किंतु इनमें से भी उपेक्षा की नियति के अवरोधों के प्रति अधिक उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, इस बड़ी चुनौती से जूझने के लिए एक अनुकूल वातावरण का निर्माण करना ही हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिए।

राजभाषा हिंदी की उभरती संभावनाएं

भूमंडलीकरण के इस दौर से हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति की सच्ची संवाहिका के रूप में उभर कर सामने आयी है। आज दुनिया भर में हिंदी के प्रति एक अंडरकरंट सा प्रवाहित हो रहा है। आज तत्संबंधी प्रयास कुछ बिखरे—बिखरे से अस्पष्ट या अधूरे से लग सकते हैं किंतु जैसे ही इनमें एकजुटता और तारतम्यता नजर आने लगेगी, वैसे ही हिंदी का आभामंडल समूची सृष्टि को अपने आग़ोश में ले लेगा; चाहे वह बाजार का क्षेत्र हो, ज्ञान—विज्ञान हो, दर्शन आध्यात्म या फिर साहित्य; कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं रहेगा इसके निश्चित काम है, विशेषकर, नये दौर में हिंदी का बदलता हुआ आकर्षक स्वरूप और बाजार की ताकतों में इसकी बढ़ती हुई उपयोगिता इसका प्रमुख आधार है। हिंदी जिस अदम्य शक्ति की स्वामिनी हो चली है, उसका ठीक—ठीक आभास अभी तक हिंदी अनुरागियों को ही नहीं हो सका है तो भला उन 'प्रगतिवादी इंडियंस' को कैसे होगा जो इसे सिर्फ पिछड़ेपन के प्रतीक के रूप में देखते हैं।

हिंदी बदल रही है, इसकी प्रयुक्तियां बदल रही हैं, इसकी संरचना, शैली और यहां तक कि प्रवृत्तियां भी आज बदलाव के दौर में हैं जिसने हिंदी के पंडितों को माथे पर हाथ मारने के लिए मजबूर कर दिया है, भाषा के पंडित भले ही कुछ भी कहें किंतु साहित्यिक हिंदी की किलष्टता या राजभाषाई हिंदी के नीरस प्राणहीन ढाँचे



को तोड़कर निकली हिंदी की इस नई शैली ने हिंदी की लोकप्रियता में दिन दूनी—रात चौगुनी वृद्धि कर दी है, कोई कुछ भी कहे मगर यही वह ज़ज्बा है जिसने हिंदी को पारंपारिक स्वरूप से निकालकर बोलचाल की ग्लोबल भाषा के रूप में एक नयी पहचान दी है, इस भाषा में एक नयी धार, नया पैनापन तथा नयी आक्रामकता नजर आती है जिसने हिंदी के मिजाज़ और तेवरों को बदलकर रख दिया है। इसमें ताजगी के साथ—साथ आधुनिकता का पुट भी झलकता है।

इसीलिए, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ—साथ आज की युवा पीढ़ी को भी ऐसी हिंदी के बढ़ते क्रेज से कोई परहेज़ नहीं है, यहां तक कि 'स्टेट्स सिंबल' या कि तथाकथित 'ग्लोबल लैंग्वेज' कहलाने वाली अंग्रेजी को लोक—व्यवहार के क्षेत्र में हिंदी के इस नये स्वरूप ने कड़ी चुनौती दी है, इसे आज़ादी से पहले की हिंदुस्तानी जुबान का ही एक ऐसा नया संस्करण कहा जा सकता है जो सभी को अब सहज रूप से स्वीकार्य हो चला है। हिंदी की यह नयी धारा ही अब हिंदी का मानक स्वरूप बनती जा रही है, आज दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई, विदेशी हिंदी विद्वानों का हिंदी के प्रति बढ़ता आकर्षण और प्रौद्योगिकी एवं कंप्यूटर आदि के क्षेत्र में हिंदी का बढ़ता प्रयोग इसी का स्वयंसिद्ध परिचायक नहीं तो और क्या है? यह हिंदी बिंदास (उन्मुक्त) है यानि बंधनों से मुक्त और भाषिक शुद्धता या व्याकरण की कैद से निकली आज़ाद हिंदी है जिससे

भाषाई विद्वेष की लौह-दीवारें भी अब किसी हद तक दरकती दिख रही है।

कल यदि इसी तथ्य के चलते देवनागरी एक ग्लोबल लिपि बन जाए तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए, सरकार एवं निजी संस्थाओं के प्रयासों से आज शब्द संसाधक, डेस्क टॉप पब्लिशिंग, ई-मेल, भाषा अध्ययन, लिप्यंतरण, मशीनी अनुवाद इंटरफेस और इंटरनेट सक्षम जैसी सुविधाएं अब भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध हो रही है, यद्यपि इंटरनेट पर हिंदी की उपस्थिति दर्ज होने में काफी समय लगा है किंतु मानक की बोर्ड की समस्या कुंजीपटल के फोनेटिक उपयोग ने एक सीमा तक हल कर दी है अब तो रही सही समस्या का समाधान हिंदी का यूनीफॉन्ट आ जाने से स्वतः ही हो गया है।

हिंदी में उभरते नए अवसर

हिंदी का प्रयोग बढ़ने के साथ-साथ हिंदी का उभार नये-नये क्षेत्रों में हो रहा है, इस स्थिति में हिंदी में रोजगार की विपुल संभावनाएं पैदा हुई हैं, जो लोग रोज़ी-रोटी की दृष्टि से हिंदी को नकारा समझने लगे थे, उन्हें भी अब यह अहसास होने लगा है कि हिंदी की शक्ति में दिनोदिन वृद्धि हो रही है। हिंदी में विज्ञापन लेखन, प्रुफ रीडिंग, अनुवाद एवं पुस्तक लेखन के क्षेत्र में तथा विज्ञापनों के संवाद मीडिया में हिंदीविदों के लिए अनंत संभावनाओं के द्वार खुल रहे हैं। डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक और एनिमल प्लेनेट जैसे चैनलों के हिंदी प्रसारण ने यह साबित कर दिया है कि हिंदी में भी गंभीर आर्थिक और वैज्ञानिक चिंतन संभव है आज आर्थिक तकनीकी, कानूनी और वैज्ञानिक विश्लेषण लिखने के लिये हिंदी विशेषज्ञों की आवश्यकता निरंतर, बढ़ रही है और इन क्षेत्रों ने रोजगार नए अवसर पैदा किए हैं। इनमें समाचार लेखन सूचना, खेल तथा मनोरंजन चैनल भी शामिल हैं।

हिंदी में डब की जा रही है अंग्रेजी फिल्में भी इसी भावना को पुष्ट करती है। कार्टून नेटवर्क, डिज़नी एवं पोगो आदि भी घंटों हिंदी में प्रसारण करने लगे हैं। धार्मिक चैनल जैसे आस्था, संस्कार, साधना, श्रद्धा आदि तो पहले से ही 24 घंटे हिंदी में हैं। बाकी क्षेत्रों में इसे आरंभ करने के प्रयास जारी हैं क्योंकि ज्यादातर लोगों का इसी भाषा में जुड़ पाना संभव है। कार्यक्रम प्रस्तोताओं को

हिंदी सिखाने वालों तथा हिंदी कॉर्पी राइटरों की मांग में भी जबरदस्त उछाल आया है। यहीं तक कि बड़ी-बड़ी कंपनियों के पदाधिकारियों को या सरकारी अधिकारियों को टीवी कैमरों के सामने हिंदी में सही रूप से इंटरव्यू देने के लिए सही हिंदी उच्चारण सिखाने वालों की मांग में भी काफी वृद्धि हुई है। आने वाले समय में इन क्षेत्रों में हिंदी प्रशिक्षकों का वर्चस्व बना रहेगा। यह भारतीय एवं वैश्विक परिदृश्य में हिंदी की बढ़ती हुई भूमिका का घोतक नहीं तो और क्या है?

संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि जहां एक ओर जन-भाषा हिंदी की लोकप्रियता ने अनंत ऊंचाइयों को छुआ है, वहीं दूसरी ओर इसने राजभाषा के रूप में भी नई बुलंदियों को चूमा है। असफलताएं भी देखने को मिली पर हर नई असफलता ने नई सफलता का मार्ग प्रशस्त किया है। आज भाषा के नेटवर्क के तौर पर हिंदी विश्व की किसी भी समृद्ध भाषा से कमतर नहीं, हां इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि कमी रही तो सिर्फ एक कि भाषा की राजनीति ने हिंदी की सार्थकता और इसकी उपलब्धियों का रंग चटक होने से रोके रखा पर 21वीं सदी तक आते-आते हिंदी के प्रसंग को लेकर यह मानसिक दुर्ग भी ढहता दिखाई देने लगा है। हिंदी का सफर सिर्फ उल्लिखित क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है अपितु कम्प्यूटर जगत, शिक्षा जग, ज्ञान-विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में भी हिंदी ने एक लंबा रास्ता तय किया है।

अंत में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि राजभाषा के रूप में जितनी भी चुनौतियां हिंदी के सामने हैं; उससे कहीं अधिक संभावनाएं इसमें निहित हैं और ऐसा कोई कारण नहीं है कि यदि भाषा के राजभाषायी स्वरूप को एक आम जन की भाषा के रूप में बदल दिया जाए तो इसके प्रति सभी संकोच और विरोध भी स्वतः ही समाप्त हो जाएंगे। कहना होगा कि भाषा केवल अपनी सामर्थ्य से बढ़ती व विकसित होती है तथापि यदि यथावश्यक परिवर्तन करते हुए राजभाषा के रूप में हिंदी का एक सहज स्वरूप अपनाने पर बल दिया जाए तो सच्चे अर्थों में हिंदी राजभाषा के रूप में स्वयं ही समुचित प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता अर्जित कर लेगी व इसमें निहित असीम संभावनाएं निखर कर सामने आएंगी।

असमियां संस्कृति के विभिन्न नाट्य रूप

पराग सर्माह

श्रीमंत शंकरदेव एक 15वीं – 17वीं शताब्दी के असमियां पॉलीमथ थे, एक संत-विद्वान, कवि नाटककार, सामाजिक-धार्मिक सुधारक और सांस्कृतिक और सास्कृतिक महत्व की एक प्रतिमा। यहाँ के लोग उन्हें महापुरुष के रूप मानते हैं, महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव।

उन्होंने पिछले सांस्कृतिक अवशेषों से नए निर्माण जैसे संगीत के नए रूपों-बोरगीत, नाट्य प्रदर्शन – अंकिया नाट, भावना, नृत्य-सत्रीया, साहित्यिक नयी नाट्य-भाषा –ब्रजावली और नाट्य प्रदर्शन, संकीर्तन तथा सामूहिक व्याख्यान के लिए प्रेक्षागृह के रूप में नामघर को सृजन करने का श्रेय है।

सत्रीय नृत्य, जो पहले शंकरदेव ने कल्पना की और विकसित किया और जिसे बाद में सदियों तक सत्रों द्वारा संरक्षित किया गया था, अब यह नृत्य, भारत के शास्त्रीय नृत्यों में से एक है। हालाँकि कुछ धर्मपरायण लोग इसे

शंकरी नृत्य भी कहते हैं।

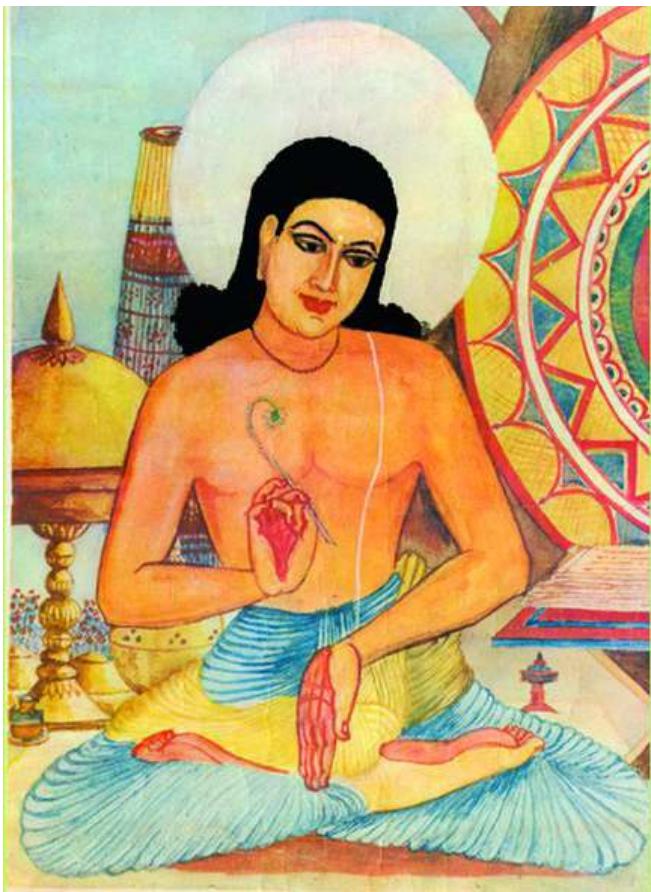
श्रीमंत शंकरदेव द्वारा सृजित किया गया अंकिया नाट, भारत की एक प्रमुख नाट्य शैली है। नाटक एक कृत्रिम पुराने मध्ययुगीन काल के काव्यिक असमियां मिश्रित भाषा में लिखे गए हैं जिन्हें ब्रजावली कहा जाता है और यह नाट्य मुख्य रूप से कृष्ण पर केंद्रित हैं। अंकिया नाट की एक विशेष प्रस्तुति को भावना कहा जाता है। नाटक आम तौर पर लाइव इंस्ट्रूमेंट्स और गायकों, नृत्य और प्रस्तुति में विस्तृत परिधानों को जोड़ते हैं। इस नाटक में संस्कृत नाटक की तरह एक सूत्रधार भी मौजूद होती है जो नाटकों को आगे बढ़ने में मदद करती है। परन्तु संस्कृत नाटक की तरह अंकिया नाट के सूत्रधार पूर्वरंग के बाद मंचपर से गायब न होकर पूरे प्रदर्शन के दौरान मंच पर विद्यमान होते हैं और संस्कृत श्लोक, गीत और गायन आदि से नाटक को और सुमधुर बनाते हुए अपनी एक विशेष भूमिका का स्थान प्राप्त करते हैं।

श्रीमंत शंकरदेव द्वारा लिखा गया नाटक (अंकिया नाट)

चिह्न यात्रा (स्क्रिप्ट विलुप्त हो गयी), पटनी-प्रसाद, जनमा-जात्रा (स्क्रिप्ट विलुप्त हो गया), कंस वध (स्क्रिप्ट विलुप्त हो गया), परिजात-हरण, काली-दमन, रुक्मणी हरण, केलि-गोपाल, श्रीराम-विजय है।

इसके अलावा, उन्होंने ट्रांसक्रिएशन ट्रांस-निर्मित धर्मग्रंथ, शंकरदेव की भागवत गीता, संस्कृत, असमियां और ब्रजावली में लिखे गए अनेकों काव्य और धार्मिक ग्रंथों को स्वरूप दिया। भागवत का उनका अनुवाद वास्तव में एक ट्रांस्क्रिएशन है, क्योंकि वह केवल शब्दों का ही नहीं, बल्कि मुहावरों और शारीरिक ज्ञान का भी अनुवाद करता है। उन्होंने मूल पाठ को स्थानीय भूमि और लोगों के लिए और सबसे महत्वपूर्ण रूप से भवित के उद्देश्य के लिए अनुकूलित किया है। मूल के कुछ हिस्सों को छोड़ दिया गया या जहां उपयुक्त था, विस्तृत किया गया।





श्री मंत शंकरदेव

उन्होंने भागवत धार्मिक आंदोलन शुरू किया, जो एक सरन धर्म है और जिसे नव—वैष्णव आंदोलन भी कहा जाता है। नव—वैष्णव आंदोलन ने दो मध्ययुगीन साम्राज्यों—कोच और अहोम राज्यों को प्रभावित किया— और समय के साथ भक्तों की सभा मठों में शुरू किया जिसे सत्र कहा जाता है, जो आज भी जारी है। यह असम में एक महत्वपूर्ण सामाजिक—धार्मिक संस्थान है और कम परिमाण में उत्तर बंगाल में भी इसका विस्तार है। शंकरदेव ने असम में भक्ति आंदोलन को गुरु नानक, रामानन्द, नामदेव, कबीर, बसवा और चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रेरित किया।

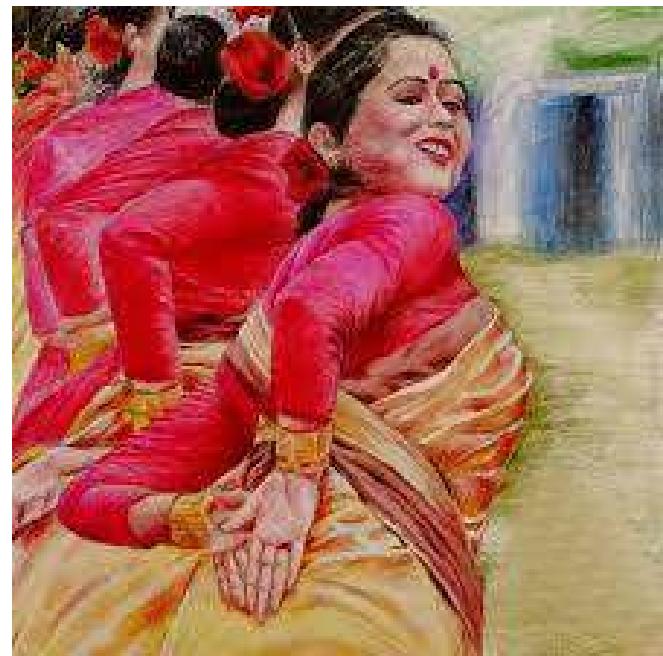
उनके साहित्यिक और कलात्मक योगदान आज असम में जीवित परंपराएं हैं। उनके द्वारा प्रचारित धार्मिक आंदोलन बड़ी आबादी, और सत्र (मठों) द्वारा प्रचलित है कि उनकी और उनके अनुयायियों की विरासत का विकास और विस्तार जारी है।

माजुली द्वीप असमियां नव—वैष्णव संस्कृति का केन्द्र रहा है। नव—वैष्णव विचारधारा असमियां संत महापुरुष

श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव द्वारा 15वीं सदी के आस—पास शुरू की गयी थी। इन महान संतों द्वारा निर्मित कई सत्र अभी भी अस्तित्व में हैं और असमियां संस्कृति का अंग बने हुए हैं। माजुली प्रवास के दौरान श्रीमंत शंकरदेव यहाँ पश्चिम माजुली के बेलागुरी नामक स्थान में कुछ महीने रुके थे। इसी स्थान पर दो महान संतों, श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव का महामिलन हुआ था। इस ऐतिहासिक भेट का बहुत महत्व है क्योंकि इसी के बाद बेलागुरी में “मनिकंचन संजोग” सत्र स्थापित हुआ। हालांकि यह सत्र अब अस्तित्व में नहीं है। इस सत्र के बाद माजुली में पैसठ सत्र और स्थापित किए गए। असम में कुल 665 मूल सत्रों में से 65 माजुली में स्थित थे। माजुली में स्थित मूल पैसठ में से अब केवल बाईस ही अस्तित्व में हैं। कुछ सत्र भटकाव के चलते विलीन हो गए और कुछ सत्र सही परिचालन के अभाव में नहीं रहे। माजुली के प्रमुख सत्र जो अब भी अस्तित्व में हैं वो निम्नलिखित हैं—

दक्षिणपाट सत्र: इस सत्र को वनमाली देव ने स्थापित किया था। वे रासलीला अथवा रास उत्सव के समर्थक थे। रासलीला अब असम के राष्ट्रीय त्योहारों के रूप में मनायी जाती है।

सामागुरी सत्र: यह सत्र रास उत्सव, भावना (धार्मिक नाट्य) और अन्य संस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए मुख्यौटा



बनाने के लिए भारत भर में प्रसिद्ध है।

गरमूढ़ सत्र: 'यह सत्र लक्ष्मीकांत देव द्वारा स्थापित किया गया था। शरद ऋतु के अंत के दौरान, पारंपरिक रासलीला समारोह धूमधाम से मनाया जाता है। प्राचीन हथियार जिन्हें "बरतोप" या तोप कहा जाता है यहाँ संरक्षित किये गए हैं।

आउनीआटी सत्र: निरंजन पाठक देव द्वारा स्थापित किया गया यह सत्र "पालनाम और अप्सरा" नृत्य के लिए प्रसिद्ध है। यह सत्र प्राचीन असमी कलाकृतियों, बर्तनों, आभूषण और हस्तशिल्प के अपने व्यापक संकलन के लिए भी प्रसिद्ध है। इस सत्र के दुनियां भर में एक सौ पच्चीस शिष्य और सात लाख से अधिक अनुयायी हैं।

कमलाबारी सत्र: बादुला पदम आता द्वारा स्थापित किया गया यह सत्र, माजुली द्वीप में कला, संस्कृति, साहित्य और शास्त्रीय अध्ययन का एक केंद्र है। इसकी

शाखा उत्तर कमलाबारी सत्र पूरे देश में और विदेशों में सत्रीय नृत्य और सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुकी है।

बेंगेनाआटी सत्र: मुरारी देव जो की श्रीमंत शंकरदेव की सौतेली माँ के पोते थे, सत्र के संस्थापक थे। यह सांस्कृतिक महत्व और कला का प्रदर्शन करने के लिए एक नामचीन सत्र था। यहाँ अहोम राजा स्वर्गदेव गदाधर सिंघा का शुद्ध सोने का बना शाही पोशाक रखा गया है। इसके अलावा यहाँ स्वर्णनिर्मित एक शाही छाता भी संरक्षित है।

ये सत्र "बरगीत", "मटियाखारा", सत्रीय नृत्य जैसे—झुमोरा नृत्य, छली नृत्य, नटुआ नृत्य, नंदे भूंगी, सूत्रधार, ओङ्गापल्ली, अप्सरा नृत्य, सत्रीय कृष्ण नृत्य, दशावतार नृत्य, आदि के संरक्षक स्थल हैं। ये सभी श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रख्यापित किये गए थे।



नृत्य कला : भारती संस्कृति का अभिन्न अंश

गोविन्द सिंह यादव



नृत्य हमारे भारत का एक महत्वपूर्ण मनोरंजन का माध्यम रहा है जिसमें हमारे पौराणिक और धार्मिक कथाओं का समावेश रहता है जो कि जब सृष्टि का निर्माण हुआ होगा तभी से किसी न किसी रूप में वह हमारे तीज त्यौहारों रीति रिवाजों में विद्यमान रहा है जहां तक मेरा सोचना है नृत्य का जो शुरुआती दौर रहा होगा वह खुले आसमान के नीचे ही होता होगा ऐसा मैं इस लिए क्या कह रहा हूं क्योंकि हमारे जितने भी लोक नृत्य हैं वह आज भी खुले आसमान के नीचे ही किए जाते हैं और जितने भी लोक नृत्य आज भी मिलते हैं वह अलग—अलग प्रांत में अपने अलग—अलग रीति—रिवाजों के साथ आज भी किए जाते हैं और किए जाते रहे हैं। इसी तरह से मेरा सोचना है की जो हमारे नृत्य रूप विकसित हुए वो खुले आकाश के नीचे ही शुरुआती दौर में किए जाते थे अब जैसे—जैसे

आवश्यकता बढ़ती गई हमने अपनी सुविधा के अनुसार से उसको कोडिफाइड किया। इसी की देन है हमारे शास्त्रीय नृत्य जैसे कथकली, कत्थक, भरतनाट्य, मोहिनीअद्वम आदि अनेक नृत्य हैं जिनका शुरुआती दौर खुले आकाश से प्रारंभ हुआ होगा लेकिन जैसे—जैसे चीजों का विकास हुआ वैसे—वैसे नृत्य भी ऑडिटोरियम या कहें सभागार तक पहुंच गया जब नृत्य सभागार में पहुंच गया तो वहां उसको जरूरत पड़ी प्रकाश की।

आज जबकि हम भी २०वीं शती में नृत्य कलाओं की बातें करते हैं तो यह कहना गलत ना होगा की प्रकाश और नृत्य का आपस में ऐसा संबंध बन चुका है जैसे शिव पार्वती जो एक दूसरे के बिना अधूरे लगते हैं और जब मिलते हैं तो एक नई कला की रचना होती है जिसे हम अर्थ नारेश्वर कहते हैं वैसे ही आज नृत्य और प्रकाश के संबंध में कहा जा सकता है जब नृत्य के साथ प्रकाश मिलता है एक नया ही स्वरूप प्रदान करता है दर्शकों को देखने के लिए सोच। मैं यह बात क्यों कह रहा हूं इसके पीछे मेरी यह है मैंने बहुत सारे नृत्य समूहों के साथ कभी प्रकाश संचालक तो कभी प्रकाश अभिकल्पक के तौर पर कार्य किया है। चलिए अब बात करते हैं पश्चिमी और भारतीय रंग मंडपों की जब हमारे यहां नृत्य प्रस्तुतियां किसी रंग मंडप में लिखी जाती हैं वहां उस समय नृत्य प्रस्तुति का महत्व ज्यादा होता है ना कि प्रकाश और रंग मंडप का। हमारे यहां प्रारंभ में ज्यादातर नृत्य प्रस्तुतियां दीए की रोशनी में की जाती थीं इसलिए उस समय से अब तक हमारी प्रस्तुतियों में भाव भंगिमा एवं वस्त्रों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता था। रंग मंडप कैसा है, उसमें लाइट कैसी है इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था लेकिन आज जिस युग में हम जी रहे हैं वहां यह ज़रूरी हो गया है कि हम इन बातों पर ध्यान दें और लोगों का ध्यान उस तरफ गया भी है इसी बात को लेकर वेस्ट में ब्लैक बॉक्स की कल्पना की गई कि जब हम डांस प्रस्तुतियां करें तो दर्शकों का पूरा ध्यान डांस करने वाले डांसर पर होना चाहिए इसके लिए ज़रूरी है कि जिस स्पेस में हम परफॉर्मेंस कर रहे हैं वह पूरा ब्लैक इसीलिए हो ब्लैक बॉक्स की कल्पना की थी इसमें कि डांस फलोर पूरी तरह ब्लैक होता है। अमूमन डांस फलोर

ब्राउन कलर का होता है लेकिन जब कोई डांस प्रस्तुति होती है तो उसमें ब्लैक लियोंडेस फ्लोर का प्रयोग किया जाता है जिससे जब ऑडिटोरियम में प्रकाश आता है उस समय सिर्फ वह डांसर और उसके द्वारा किए गए क्रियाकलाप ही दिखाई पड़ते हैं और हमारे दर्शकों का ध्यान किए जा रहे डांस पर ही केंद्रित होता है। अंधेरे से उजाले की तरफ जाने मैं कई तरह की मैजिकल मोमेंट क्रिएट किए जा सकते हैं जैसे अगर ऊपर से स्क्वायर रेक्टेंगल एसटी बनानी है तो बहुत दिखाई पड़ती हो सारी चीजें यहां तक कि एक वाइट कपड़ा है उसके पीछे स्मोक जला के टॉप लाइट देकर एक मिस्ट्री क्रिएट करता है। ऐसे ऑडिटोरियम में अभिकल्पक के लिए भी अपनी अभिकल्पना में मैजिक क्रिएट करना आसान होता है। अब निर्भर करता है अभिकल्पक की कल्पनाशीलता कि वह कितना कल्पनाशील है

मैं यह बात क्यों कह रहा हूं इसके पीछे मेरा यह है मैंने बहुत सारे नृत्य समूह के साथ कभी प्रकाश संचालक तो कभी प्रकाश अभिकल्पक के तौर पर काम किया मैंने खुद भी कथक नृत्य व तबला वा समसामयिक नृत्यों का भी प्रशिक्षण लिया है जिसका प्रभाव मेरे प्रकाश परिकल्पना में खुद ही मैं महसूस करता हूं मैं यदि यह



कहूं कि मैंने सबसे ज्यादा प्रकाश का कार्य नृत्य में करके सिखा वा जाना है जिसमें अदिति मंगल दास जी का बहुत बड़ा योगदान है। मैंने उनके साथ बहुत सारे नृत्य पिक्स में काम किया है और उनके साथ काम करके एक सोच का विकास हुआ कि दूसरे अभिकल्पक जो नृत्य के साथ काम करते हैं उनके नृत्य को अभिकल्पित करते समय उनका नृत्य के प्रति नजरिया और सोच विचार क्या होता हैं और साथ ही अलग अलग अभिकल्पित के साथ काम करके हमें अलग अलग अनुभव भी मिलता है जैसे अदिति जी का नृत्य ज्यादातर वेस्ट यानी पश्चिमी अभिकल्पकों द्वारा अभिकल्पित किए जाते हैं





वेस्ट के यानी पश्चिम देशों के अभिकल्पकों के अभिकल्पना में विचारों का बहुत महत्व होता है वह जब प्रकाश परिकल्पना किसी नृत्य की करते हैं तो उनकी हर प्रकाश परिकल्पना नृत्य के हर टुकड़े के साथ एक विचार को ले कर चलती है एक सोच होती है कि वह इस पीस से क्या कहना चाहता है और उसको ऐसा क्या करे की वो अपनी सुन्दरता को बनाए रखे । और वो विशेष भी बन जाए । इसके लिए ये भी कहा जाता है

कई मायनों में नृत्य में प्रकाश परिकल्पक को नाटक के अपेक्षा ज्यादा स्वतंत्रता मिलती है नृत्य के साथ हम अक्सर किसी न किसी नई तरह के नृत्य संरचनाओं के साथ काम करते हैं । इन प्रभावशाली नृत्य परिकल्पना में किसी तरह की प्रकाश की सीमा निर्धारित नहीं होती जैसे कि एक नाटक की परिकल्पना में अंक वह दृश्य व संरचना की वजह से एक सीमा होती है नृत्य में किसी तरह का खंड नहीं होता जैसे नाटक में होता है । यहां सृजनात्मकता का अपार सागर होता है जिसमें एक गति अथवा लय और विचार होता है और प्रकाश परिकल्पक को यहां उनके लय के साथ बहने व प्रकाश

परिकल्पना करने का सागर जैसा स्थान मिलता है

नृत्य में प्रकाश परिकल्पक के आने से नृत्य का प्रभाव और बढ़ जाता है लेकिन नृत्य परिकल्पक के नृत्य के हिसाब से ही अभिकल्पक को नृत्य की परिकल्पना करनी होती है ।

और नृत्य के हिसाब से ही परिकल्पक को अपनी परिकल्पना का काम ज्यादा करना होता है ।

जब हम किसी नृत्य के पूर्वाभ्यास में बैठते हैं तो उस समय हम उस पूर्वाभ्यास द्वारा होने वाले उस कलात्मकता के साक्षी होते हैं । कोई दो नृत्य संयोजक एक जैसी संरचना को तैयार नहीं कर सकते हैं । एक वह नृत्य संयोजक जो बार-बार अपने नर्तक से बार-बार नृत्य करवाता है इससे उस नर्तकी के बारे में पता चलता है कि उसको अपनी नृत्य संरचना पर विश्वास नहीं है जबकि इसका एक लाभ भी होता है एक ही पीस को बार-बार वैसे ही करवाना कभी-कभी वह पीस एक नया और अद्भुत रूप ले लेता है और ऐसा करने से नित्य की गति खोजना और बनाए रखना आसान होता है



बार—बार एक गति करने से डांस की जो गति होनी चाहिए वह भी फिकर्ड हो जाती है। ऐसा करने से साथ में ही एक अलग तरह की लेयर भी तैयार हो जाती है। मेरे हिसाब से जब हम नृत्य की रिहर्सल देखते हैं तो हमें भी नर्तक के साथ—साथ उस नृत्य के मूवमेंट साथ ही नर्तक के आए दिन बदलने वाले विचारों से भी अवगत होते हैं साथ ही हम नाटक के साथ साथ अपने आपको भी एक्स प्लोर कर पाते हैं कि किस चीज़ की प्रकाश परिकल्पना हमें कैसी करनी है और यह बात भी सच है कि हम किसी पर किसी नाटक को जितना अधिक बार देखते हैं या उसमें जितना अधिक टाइम देते हैं हमारे पास उस नाटक नृत्य की बारीकियां भी उतनी ही होती हैं नाटक में प्रकाश परिकल्पक को नाटक की प्रकाश परिकल्पना करने के लिए नाटक को पूर्ण रूप में तैयार होना बहुत जरूरी है क्योंकि जब नाटक पूर्ण रूप से

तैयार हो जाता है तब उसका कॉन्सेप्ट समझ में आता है कि निर्देशक उस नाटक को कैसे सोच रहा है और किस दिशा में ले जाना चाहता है और इन बातों के आधार पर हम एक नाटक की लाइट की परिकल्पना को एक मूर्त रूप प्रदान करते हैं लेकिन जब हम नृत्य की प्रकाश परिकल्पना के बारे में बात करते हैं तो हमें वहां हर पीस के लिए अलग—अलग टाइम देना पड़ता है क्योंकि हर बार चेंज होता है जब—जब डांसर उसको करता है तो पीस में चेंज होने की संभावना होती है जबकि नाटक में ऐसा नहीं होता एक बार बेसिक आइडिया विलयर होने के बाद पूरा नाटक उसी के इर्द—गिर्द बुना जाता है लेकिन उसमें हर समय नर्तक को डांस करते समय अलग—अलग विचार आते हैं और उसका हर दिन एक नया रूप स्वरूप प्रदान करता है इसके लिए जरूरी है कि जो प्रकाश परिकल्पन है वह भी लगातार मिल जाए रिहर्सल को देखें और चेंज होती हुई स्थिति में वह भी अपनी परिकल्पना को चेंज करें जिससे नृत्य और प्रकाश दोनों सामंजस्य एक जैसा हो पाए और यदि प्रकाश परिकल्पक को जिस नृत्य की वह परिकल्पना करने जा रहा है उसकी समझ है तो वह आखिरी समय में होने वाले बदलाव को आसानी से समझ सकता है उसकी प्रकाश परिकल्पना करने में उसको आसानी होती है यदि नर्तक के नृत्य के साथ प्रकाश परिकल्पक का आपसी तालमेल अच्छा हो तो नृत्य संरचना भी अच्छी दिखाई पड़ती है



भारतीय संस्कृति के विविध संदर्भ

डॉ. मुकेश कुमार मिश्र

भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति जिसमें विश्व की अनेक संस्कृतियाँ समाहित हैं। यदि यह कहा जाय भारत कृषि प्रधान देश होने के साथ—साथ संस्कृतियों का देश है, तो ज्यादा न्याय संगत होगा।

हमारी संस्कृति सनातन धर्मी संस्कृति है जिसमें सभी को समाहित करने की शक्ति विद्यमान है। एक अरब पैंतीस करोड़ से अधिक आबादी वाला देश (भारत) अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपने समाज की सहिष्णुता के कारण ही विश्व के मानचित्र पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। हमारी संस्कृति की जड़े इतनी गहरी हैं कि उसका आरम्भ ढूढ़ना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि अनादि काल से हमारी संस्कृति सनातन रही, पेड़ों की पूजा से लेकर महापुरुषों के आराध्य रूप को हमारी संस्कृति ने अपने में समाहित किया हुआ है। इतना ही नहीं चाहे भारत के प्रदेशों में प्रवासी हो या विदेशों में उनकी मूल थाती में उनकी संस्कृति के रीति—रिवाज उनके धार्मिक ग्रन्थ उनके संस्कृति के आधार रूप में उन्हें अन्दर से आत्मबल देते हैं। संकट से उबारने का वही एक माध्यम रहा।

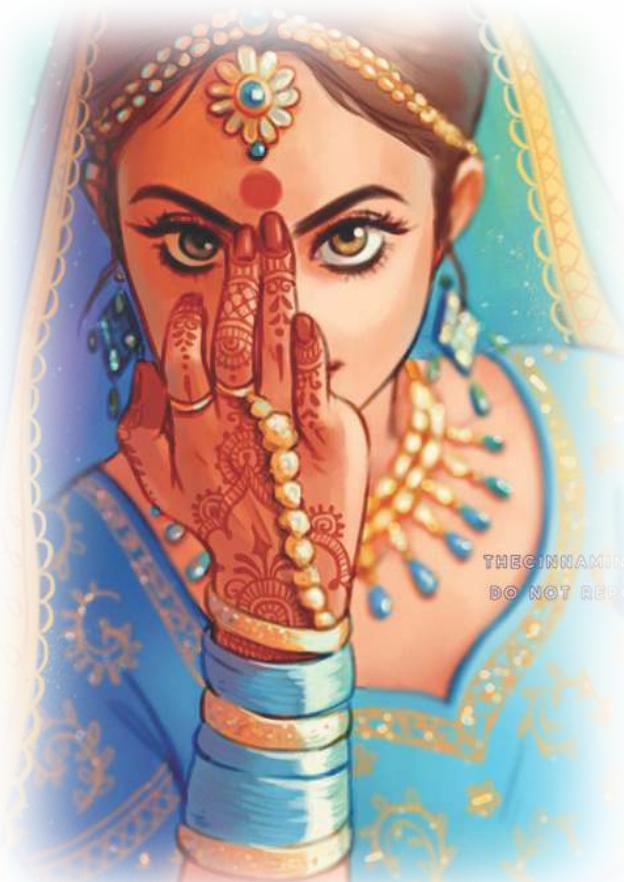
भारतीय संस्कृति हमेशा से एक सूत्र में बांधने का कार्य करती रही है। हम कितने भी आधुनिक क्यों न हो जायें किन्तु अपनी परम्परा एवं रीति—रिवाज से कभी भी मुँह मोड़ नहीं सकते। गर्भधारण से लेकर जन्म और मृत्यु की परम्परा में वही संस्कृति के मूलभूत जीवन की मूल अवधारणायें हैं जो हमें बांधे रखती हैं। हमारी तमिल संस्कृति एक छोटा सा उदाहरण है जब बच्ची युवा अवस्था में पहुँचती है और उसके यौवन पाठशाला का प्रथम दिन आने पर एक विवाह उत्सव की तरह उत्सव मनाया जाता है। बच्ची युवा अवस्था में पहुँच चुकी है और वह विवाह योग्य हो गयी है यह उत्सव सांस्कृतिक संदर्भों के रूप में इसलिए महत्वपूर्ण है कि जहाँ हमें छुपाने की नहीं बल्कि बताने की आवश्यकता महसूस होती है जिससे सभी इससे परिचित हों और समझ सकें।

हमारी संस्कृति हमेशा से अनेकता में एकता की संस्कृति

रही है जिस पर हमें गर्व है। वर्षा कराने से लेकर उसे संचित करने की व्यवस्था का प्रावधान हमारी सनातन धर्म की संस्कृति का विशेष आधार रहा है। आधुनिक संसार की आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में जहाँ मशीनी युग ने हमें आधुनिक बनाया है, परन्तु कहीं न कहीं हमारी संस्कृति को ढकोसला भी कह सकते हैं। आधुनिक युग में बादलों को अपने वैज्ञानिक युग के मशीनरी प्रभाव से किसी अन्यत्र स्थान पर बरसाने का स्वरूप देखा जाता है किन्तु हमारी संस्कृति में इन्द्र देवता को पूजा और वर्षा गीत के माध्यम से प्रसन्न कर वर्षा कराने का भी उपक्रम माना जाता है। यह झूठा ही सही परन्तु हमारी संस्कृति आस्था में इसका विशेष महत्व दो अर्थों में है, एक तो ईश्वर को प्रसन्न करना तथा दूसरा वर्षा करा के जन में इस आस्था को स्थापित करना कि ईश्वर सत्ता का प्रभाव है।

सांस्कृतिक संदर्भों की जब भी आप पड़ताल करेंगे तो देखेंगे कि हम भारतीय लोग कर्म के सिद्धान्त के साथ





अपनी संस्कृति को एक सूत्र में बाँधकर आगे बढ़ते हैं, क्योंकि हम भारतीयों में अपनी संस्कृति के प्रति आगाध प्रेम है। हमने अपनी संस्कृति के आधार पर सम्पूर्ण विश्व को एक दिशा दी है। हमारे भारतीय गिरमिटिया भाई-बहन जहाँ भी विश्व में अपनी रोजी-रोटी के लिए ले जाये गये वहाँ भी अपनी संस्कृति के धार्मिक ग्रन्थों और रीजि-रिवाजों को नहीं छोड़। चाहे मॉरीशस सहित अन्य गिरमिटिया देशों की बात करें, हमारी संस्कृति के पवित्र त्यौहारों दीवाली, होली, तीज, रामनवमी, महाशिवरात्रि आदि संस्कृति त्यौहारों को अपने संस्कारों में हमेशा जीवित रखा है। मॉरीशस के 'गंगा तलाव' का शिवरात्रि महा उत्सव इसका सबसे बड़ा उदाहरण है कि महाशिवरात्रि के दिन गंगातलाव का दृश्य किसी भी भारतीय धार्मिक महाशिवरात्रि स्थल से कम प्रभावशाली रूप में नहीं दिखता। भगवान शिव की 110 फिट की मूर्ति का दृश्य देखते ही बनता है। इतना ही नहीं सनातन धर्म ने वहाँ की मॉरीशियन संस्कृति पर इतना प्रभाव छोड़ा है कि मॉरीशस की पैसठ

प्रतिशत आबादी हमारी संस्कृति को भी अपनाये हुए है। एक दूसरा भी रूप है जो मॉरीशस के लोगों को अत्यन्त प्रिय है वह हमारी हिन्दी फिल्मों के गीत प्रायः आप वहाँ के लोगों को गुनगुनाते ज़रूर सुन सकते हैं। रेस्टोरेन्टों के बाहर नमस्ते जी जैसे सम्बोधन पोस्टरों में आप भारतीय संस्कृति के प्रति उनके लगाव को देख सकते हैं। विश्व भोजपुरी सम्मेलन तथा विश्व हिन्दी सम्मेलनों से यह प्रमाणित है कि मॉरीशस के लोग हमारी भारतीय संस्कृति से कितने प्रभावित हैं।

आज वैश्वीकरण के युग में संस्कृति सन्दर्भों के कई रूपों में परिवर्तन आया। वैश्वीकरण ने हमारे साहित्य और संस्कृति दोनों को सर्वाधिक प्रभावित किया है। हमारी संस्कृति हमेशा से सम्पूर्ण विश्व संस्कृति सूत्र में बंधकर चलने वाली नहीं है। 'जीयो और जीने दो' का भाव हमारा रहा है। 'सर्वे भवन्तु सुखना, सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या काश्चेद्, दुख भाग भवेत्' रही है। भारतीय संस्कृति समाज, संस्कार, भाषा साहित्य की नींव पर गढ़ी गयी है जिसके द्वारा हमारी संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। हमारी सांस्कृतिक धारा ने सौहार्द्र प्रेम और संस्कार का जो गुण





हमें प्रदान किया है उसकी धारा इतनी ग्राही है जो हमें हमेशा अपने कर्तव्यों और सिद्धान्तों पर चलने के लिए बाध्य करती है। आज के बदलते सामाजिक सिद्धान्तों में पारिवारिक विघटन का जो स्वरूप देखा जा रहा है यह हमारी संस्कृति से बिल्कुल विपरीत है। भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। हमारा स्वयं का नारा है हम एक हैं एक ही रहेंगे। विश्व के अन्य देशों को यह समझने की जरूरत है कि संयुक्त रूप से रहना अपने को मजबूत करने जैसा है।

यह सत्य है कि धर्म के साथ भाषा और बोलियों के अन्तःसम्बन्धों की परिधि में संस्कृति अपने आप जुड़ जाती है। यह एक प्राकृतिक स्वास्त्र सत्य भी है, जब धर्म के साथ सांस्कृतिक विकास यात्रा प्रारम्भ होती है तो वह न जाने जीवन के कितने हिस्से को प्रभावित करती है उसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता है। एक प्रकार से धर्म संकल्प सांस्कृतिक संदर्भों का वह हिस्सा है जो हमेशा अपने विचारों और उपदेशात्मक संदर्भों से

हमे विचलित नहीं होने देते, वह हमें उसी सद्मार्ग की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं जो हमारी आस्था और संस्कृति से जुड़े होते हैं।

इतना ही नहीं होली उत्सव की पूरी कहानी होलिका दहन से लेकर उसके उत्सव के सभी कर्म काण्ड एवं रूप भारतीय गिरमिटिया एवं मॉरीशियन लोगों में एक जश्न उत्सव का रूप लिये हुए दिखलायी पड़ती है।

भारतीय संस्कृति के आराध्य राम, सीता, शिव, गणेश, पार्वती, विष्णु, दुर्गा जी आदि कई देवी-देवता भी अभिन्न रूप में विद्यमान हैं, जिनके आदर्श हमारी संस्कृति का हिस्सा बन चुके हैं। जहाँ तक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के व्यक्तित्व का सवाल है तो वह हमारी संस्कृति के सर्वमान्य पुरुषोत्तम रूप हैं किन्तु इसके अतिरिक्त इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, बर्मा, श्रीलंका, कम्बोडिया के अतिरिक्त दक्षिणी-पूर्वी एशिया के कई देशों में उनके व्यक्तित्व एवं चरित्र को राम लीलाओं के माध्यम से एक नये रूप में देखा जाता है, वही यह हमारी संस्कृति का परिचायक भी हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम केवल भारतीय संस्कृति के आदर्श नहीं हैं, बल्कि विश्व संस्कृति के पुरुषोत्तम आदर्श के रूप में उन्हें परिभाषित किया जाता है। धर्म और संस्कृति एक दूसरे के पूरक जैसे हैं। धर्म नीति के आधार पर ही संस्कृति का जन्म होता है, उसे हम धर्म के पारम्परिक संदर्भों के रूप में भी परिभाषित करके संस्कृति से जोड़ते हैं। धर्म के बहुत से सिद्धान्त हमारी संस्कृति के आधार बने हैं। बौद्ध तथा जैन धर्म के सिद्धान्त हमारी संस्कृति के ही परिचायक हैं। गीता के उपदेश जहाँ हमें उचित एवं अनुचित का बोध कराते हैं वही सांस्कृतिक संदर्भों में नैतिकता का बोध भी कराते हैं। तुलसीदास की कृति रामचरित्र मानस मूलतः अवधी जन बोली के रूप में रची गयी है किन्तु अपनी उपदेशात्मक, संवेदनात्मक रूप के साथ सांस्कृतिक सन्दर्भों का ऐसा विधान्त निरूपित किया है, आज विश्व के लगभग सभी भाषाओं में उसके अनुवाद से प्रमाणित है कि वह कितना महत्वपूर्ण हैं। हमारे धार्मिक ग्रन्थों की एक बड़ी भूमिका हमारे सांस्कृतिक विरासत को बढ़ाने तथा उसे संरक्षित करने में रही है। हमारे कर्म-काण्ड और पूजा पाठ यह सिद्ध करते हैं कि सनातन धर्मी संस्कृति का प्रभाव हमें अन्दर से आत्मबल देता है।

भारतीय संस्कृति के बहुत से संदर्भ हमारे परिधान एवं फिल्मों के रूप में समाज को सांस्कृतिक रूप में अग्रah करते रहे हैं। जहाँ तक परिधान का संस्कृतिक रूप से प्रभावित करने का प्रश्न है तो आगरा, मथुरा, वृन्दावन के क्षेत्रों में बहुतया संख्या में पश्चिमी देशों की महिलाओं को साड़ी तथा पुरुषों को धोती कुर्ता तथा पैजामे में देख सकते हैं, उनके कृष्ण एवं दास भाव का स्वरूप उन्हें सांस्कृतिक संदर्भों की ओर आकृष्ट करता है। बल्लभ सम्प्रदाय के अष्टसखाओं ने भारतीय संस्कृति को जो प्रौढ़ता प्रदान की है वह विशेष रूप से इसलिए उल्लेखनीय है कि उन्होंने लौकिक और अलौकिक सत्ताओं का वरण कर उसे अपनी सांस्कृतिक रूपों में समान रूप से मान्यता देकर उसे संसार को वरण करने के लिए प्रेरित किया है।

भारतीय फिल्मों में भी अपने कथानक, कथ्य शिल्पों के साथ—साथ गीतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रचार—प्रसार तो किया ही उसे विश्व को हमारी संस्कृति से जुड़ने के लिए प्रेरित किया—‘नदिया के पार’ जैसी फिल्मों ने जहाँ भोजपुरी फिल्मों के उस गवर्झ रूप को संवेदनात्मक और पारिवारिक सम्बन्धों के निर्वाहन का जो रूप प्रदर्शित किया है वह भारतीय संस्कृति के उस चौबेपुर गाँव के साथ भाभी और देवर के सम्बन्धों की सांस्कृतिक विरासत को भी परिभाषित किया। फिल्म का गीत ‘साँची कहूँ तोरे आवन से हमरे अंगना में बहार भौजी, लक्ष्मी की सूरत ममता की मूरत लाखों में एक हमार भौजी’। जैसे गीतों ने हमारी संस्कृति को एक आदर्श रूप में जन के सम्मुख प्रस्तुत किया जो हमारी संस्कृति के बड़े हिस्से को प्रभावित करता है।

भारतीय संस्कृति का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण संस्कृति से जुड़ा है जो अपनी विरासत को विश्व संस्कृति के साथ जोड़े हुए है। हिन्दी फिल्मों के गीतों के साथ पारिवारिक, सामाजिक संदर्भों पर जिन फिल्मों का निर्माण किया वह अतुलनीय है। हिन्दी फिल्म ‘खानदान’ में भाईयों के परस्पर प्रेम और बाद में बटवारे का दृश्य साथ ही उस फिल्म का गीत ‘कल चमन था आज एक सेहरा हुआ देखते—देखते यह क्या हुआ, मुझे गम नहीं बरबादी का गम तो बस यही बरबादी का क्यों चर्चा हुआ’। जैसे गीतों ने भारतीय संस्कारों की सांस्कृतिक की ऐतिहासिकता का प्रतिमान प्रस्तुत किया है वह



भारतीय संस्कृति को ऐसा संदर्भ रूप है जिसमें भाई प्रेमत्व के सांस्कृतिक रूप को प्रदर्शित किया है।

यह सर्वविदित है कि हिन्दी फिल्मों के गानों ने सबसे ज्यादा हमारी संस्कृति का कैनवास बड़ा किया है। सामाजिक, पारिवारिक फिल्मों में रिश्तों एवं मानवीय जीवन को जितना चलचित्रों एवं टेलीफिल्मों के माध्यम से उकेरा है वह महत्वपूर्ण इस अर्थ में है कि जन संचार के रूप में वह जन तक आसानी से पहुँचा है। संगीत किसी भी भाषा या संस्कृति का हो वह सबसे अधिक प्रभावित करता है।

भारतीय संस्कृति का विस्तार संगीत, भाषा, साहित्य, सामाजिक रीति—रिवाज एवं फिल्मों के साथ ही विस्तार पा सका है किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे पहलू भी हैं जो हमारी संस्कृति के मूल आधार बने। गंधार कलाकृति, मकराना के मार्बल की नक्काशी तथा वस्त्रों पर जरी आर्ट्स ने हमारी व्यापारिक व्यवस्था को मज़बूती दी है साथ ही साथ विश्व फलक पर अपनी प्राचीन एवं मध्यकालीन कला कार्यों के भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराता रहा। एक सरसरी निगाह डाली जाये तो हमारे विवाह, संस्कार, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार हमारी संस्कृति के परिचायक तो हैं लेकिन इन उत्सवों के दौरान जो गीत हमारे पूर्वजों की सांस्कृतिक थाती के रूप में मिले हैं उनका विशेष महत्व है।

लोक संस्कृति हमारी संस्कृति की वह आधारशिला है जिसमें हमारी संस्कृति को सबसे अधिक विकसित किया



है। गिरमिटिया भाई—बहन खदानों एवं गन्ने की खेती में कार्य करते समय वही पूर्वजों के लोकगीत और संगीत थे जो उन्हें कार्य करने के लिए सम्बल प्रदान करते थे। यही नहीं आधुनिक भारतीय पार्श्व गायिकाओं ने इस सांस्कृतिक लोकगीतों को गाकर अपनी पहचान तो बनायी ही साथ ही साथ हमारी लोक संस्कृति को भी स्थापित किया। शारदा सिन्हा, मालिनी अवस्थी आदि बहुत से कलाकारों ने लोकगीतों को गाकर बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।

हमारी संस्कृति के बड़े हिस्से को हमारे साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति को मजबूत किया है। स्वतंत्र भारत के पूर्व भारतीय साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से संस्कृति का सहारा लेकर स्वतंत्रता का बिगुल बजाया, वह विशेष महत्वपूर्ण रहा। जहाँ बंकिम जी का 'सुजलाम, सुफलाम मलयज शीतलाम' जहाँ स्वतंत्रता की हुँकार भरता है वहीं महाकवि प्रसाद 'हिमाद्र तुंग सुंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' का शंखनाद कर सांस्कृतिक चेतना के द्वारा भारतीय क्रांतिकारियों में एक नई स्फूर्ति भरते हैं। प्रसाद और निराला हिन्दी साहित्यकारों के रूप में ऐसे प्रतिमान सांस्कृतिक संदर्भों में रचे हैं जिनकी तुलना किसी से

नहीं की जा सकती है। अल्लमा इकबाल ने भी भारतीय संस्कृति के कुछ ऐसे प्रतिमान गढ़े जो आज भी प्रासंगिक हैं। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा' 'लव पर आती दुआ बन कर तमन्ना मेरी' जैसी उनकी पंक्तियाँ हमारी उसी संस्कृति का आधार हैं जो कभी एक ही संस्कृति का हिस्सा रही हैं। यह अलग बात है कि आजादी के बाद संस्कृतियाँ भिन्न हुई और विचार अलग हुए किन्तु कभी वह हमारी संस्कृति का हिस्सा रही हैं।

आज के भौतिकवादी संसार में जहाँ स्वार्थपरक जीवन अब हमारे जहन में जगह बना चुका है। ऐसे समय में भारतीय संस्कृति की उन मूल जड़ों की ओर लौटना होगा जिसने वसुधैव कुटुम्बकम के साथ सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की संस्कृति के आधार पर समाज का ताना—बाना बुना है। सौहार्द और प्रेम के बन्धुत्व रूप को ही संस्कृति का मानवीय मूल्य माना है। आपसी भाईचारे के द्वारा समाज की संरचना का आधार रचा है। सम्पूर्ण विश्व को भारतीय संस्कृति के आधारभूत मूल्यों के साथ संस्कृति के उन जीवन मूल्यों का वरण करना होगा जो सम्पूर्ण विश्व संस्कृति को नई दिशा दे सके। हमारी भारतीय संस्कृति ही हमारी पहचान है।

संघर्ष संस्कृति और संगीत के प्रतिरूप : उस्ताद अलाउद्दीन खाँ

डॉ. श्याम रस्तोगी

भारतीय संगीतकला को विभिन्न संगीतज्ञों ने समय—समय पर अपनी प्रतिभा व सृजनात्मक क्षमता से समृद्धशाली बनाया है। इन संगीतकारों में से उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का नाम अग्रणी है जिन्होंने भारतीय संगीत के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया है। उस्ताद

अलाउद्दीन खाँ साहब ने अपनी कठोर संगीत साधना से संगीत जगत को इतने गहरे ढंग से प्रभावित किया है कि उन्हें वाद्य संगीत का 'युग प्रणेता' भी कहा जा सकता है।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का जन्म सन् 1881 में त्रिपुरा



रियासत के ब्राह्मण बाड़िया के निकट एक छोटे से ग्राम – ‘शिवपुर’ में, एक माध्यम श्रेणी के मुस्लिम परिवार में हुआ। आपके पिता श्री साधु खाँ और माता का नाम हरसुन्दरी देवी था।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की पारिवारिक पृष्ठभूमि संगीतमय थी। आपके पिता साधु खाँ को संगीत में बहुत रुचि थी। वे रात-दिन गायन-वादन सुनते रहते थे। बाद में साधु खाँ ने सितार वादन की विधिवत शिक्षा उस्ताद कासिम अली खाँ से ग्रहण की थी। उ. अलाउद्दीन खाँ के बड़े भाई समीरुद्दीन खाँ ढोल बजाते थे तथा आफताबुद्दीन खाँ ने मृदंग व तबले की शिक्षा श्री रामधन शील व श्री रामकनाई शील से ली इसके अतिरिक्त इनको शहनाई, बांसुरी एवं वायलिन की भी तालीम प्राप्त थी। आपके छोटे भाई श्री नायब अली खाँ सितार बजाते थे तथा श्री आयत अली खाँ सुरबहार के कलाकार थे। उस्ताद अलाउद्दीन के बड़े भाई उस्ताद आफताबुद्दीन खाँ साहब ने भी वादक के रूप में यश अर्जित किया। इन्होंने “रौशन चौकी” नाम से अपने एक वादन दल का भी गठन किया था। इसके अतिरिक्त आपने कई नवीन वाद्यों का भी आविष्कार किया था।

संगीत के इन आरम्भिक संस्कारों का अलाउद्दीन खाँ साहब के मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि इन्होंने संगीत सीखने का दृढ़निश्चय कर लिया। अपने गाँव के शिव मन्दिर में साधु-संतों के साथ कीर्तन तथा दबले की संगति भी किया करते थे। इस प्रकार वे अपने विद्यालय का सारा समय यहीं व्यतीत करते थे। इस बात से आपकी माताजी को अत्यधिक क्रोध हुआ और इनकी बहुत पिटाई की, किन्तु दृढ़ संकल्पी आलम (उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के बचपन का नाम) ने संगीत सीखने के लिये अल्प आयु में ही गृह त्याग दिया। 8–10 वर्ष की आयु में आप साधुओं की टोली के साथ कलकत्ता चले गये। उनका समय बड़ा ही कष्टमय बीतने लगा। आलम, किसी साधु की सहायता से डॉ. केदारनाथ के दवा खाना पहुँच गये। संगीत के प्रति आपकी लगन देखकर डॉक्टर साहब आपको अपने गुरु यतीन्द्र मोहन ठाकुर के दरबारी ध्वनपदिया पं. गोपालचन्द्र भट्टाचार्या उर्फ़ नूलो गोपाल के पास ले गये, जहाँ आलम ने तीन चार वर्ष तक बड़े ही लगन से गायन की शिक्षा ली एवं अभ्यास किया। इसी मध्य आपने पं. नन्दलाल जी से तबला एवं मृदंग की शिक्षा ली।

नूलो गोपाल की आज्ञा से आपके भाई अफताबुद्दीन आपको गाँव वापस ले आये और आप पुनः कलकत्ता न चले जाये इसलिए आपका विवाह कर दिया गया। दृढ़ संकल्पी आलम को यह घटना भी न रोक सकी और आप पुनः कलकत्ता लौट गये। वहाँ जाकर श्री नूलो गोपाल जी के दामाद व शिष्य किरण बाबू से आपके गुरु श्री नूलो गोपाल जी के स्वर्गवास का समाचार प्राप्त हुआ। इस घटना से आपको बहुत ही दुख पहुँचा और आपने अब वाद्य सीखने का निश्चय किया। इस इच्छा के साथ आप विवेकानन्द के भाई अमृतलाल दत्त उर्फ़ हाबूदत्त से वाद्य वादन की शिक्षा के लिये मिले तथा आग्रह किया। हाबूदत्त क्लोरेनेट, शहनाई, सितार और भी अनेक वाद्य बजाते थे ओर नेशनल थियेटर में कॉन्सर्ट तैयार करवाते थे। अलाउद्दीन खाँ उनसे वॉयलिन और क्लोरेनेट सीखने लगे।

अलाउद्दीन खाँ के प्रखर बृद्धि, लगन तथा गुरु भक्ति देखकर हाबूदत्त ने इन्हें गुणी कलाकार बनने का आशीर्वाद दिया। हाबूदत्त के पास ही अलाउद्दीन खाँ ने अंग्रेजी बैण्ड व उसका संचालन तथा शहनाई वादन की भी शिक्षा ली थी। कुछ समय बाद हाबूदत्त ने श्री गिरीशचन्द्र घोष के पास मिनर्वा थियेटर में बारह रूपये



प्रतिमाह की नौकरी भी दिलवा दी। विभिन्न वायदों के ज्ञाता होने से अलाउद्दीन खाँ मिनर्वा थियेटर में नौकरी करते रहे वहीं इन्होंने कई वायद बजाये और कई कंसर्ट व गीत तैयार किए। मिनर्वा थियेटर में नौकरी करने के साथ ही अलाउद्दीन खाँ ने ईडनगार्डन के बैंड मास्टर अल्बर्ट लोबो से वायलिन पर पश्चिमी संगीत की वादन तकनीकी व स्टाफ—नोटेशन की शिक्षा ली।

कुछ समय बाद आपने मिनर्वा थियेटर की नौकरी छोड़ दी और मुक्ता गाघा के जर्मींदार 'श्री जगत किशोर आचार्या' के दरबार में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने गये। वहाँ आप रामपुर दरबार के प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद आबिद अली खाँ के पुत्र उस्ताद अहमद अली खाँ का सरोद वादन सुनकर आत्मविभोर हो गये और इनसे सरोद वादक सीखने की विनती की। उस्ताद अहमद खाँ साहब से आपने 3-4 वर्ष तक संगीत शिक्षा ली और चक्रदार गत तथा तराने के बोल सहित कई बारीकियों को आत्मसात् किया।

आप कलकत्ता में अपने गुरु उस्ताद अहमद खाँ के पास रहकर उनकी पूरी सेवा—सुश्रुषा करते थे तथा उनके साथ उनके कार्यक्रमों में तबला संगति भी किया करते थे। कभी—कभी आप अपने वायलिन की प्रस्तुति भी देते थे। इस प्रकार आपकी प्रसिद्धि भी बढ़ने लगी। परन्तु अपने गुरु की तन—मन से सेवा करने के उपरान्त भी आपको कुछ विशेष शिक्षा नहीं मिलती थी। अतः आप गुरु के अभ्यास के समय छुपकर उनका वादन सुनते थे और उन चीजों का स्वरलिपि बना लेते और रियाज करते, साथ ही अपने पहले गुरु नूलो गोपाल के सिखाये हुए पलटों का भी रियाज करते थे। इसी क्रम में एक बार आप अपने गुरु द्वारा बजाये 'राग दरबारी तोड़ी' के जोड़ आलाप का काम छुपकर रियाज कर रहे थे और गुरुजी इस बात से नाराज हो गये कि बिना उनके सिखाये आप जोड़—आलाप का काम क्यों कर रहे हैं। गुरुजी ने आपको क्षमा तो कर दिया, परन्तु आपकी शिक्षा यहीं समाप्त कर दी। कार्यक्रमों से प्राप्त धनराशि को गुरु—दक्षिणा के रूप में आपने अपने गुरुजी को दे दिया और दूसरे गुरु की तलाश में आगे बढ़ चले।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ सीखने की इच्छा से रामपुर में कई गुणीजनों के पास गये, परन्तु कोई भी शिक्षा देने के लिए तैयार नहीं हुआ। अतः इन्हीं दिनों रामपुर के उस्ताद वज़ीर खाँ के पास जाने का निश्चय किया।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपने आत्मबल के सहारे ही उनके पास जाने का निर्णय लिया। परन्तु उनके पास जाने के सभी प्रयासों में आपको सफलता नहीं मिली और इस गहन निराशा के कारण आपने आत्महत्या करने का निर्णय लिया। आपने शाम के नमाज़ के बाद मस्जिद में ही अफीम खाकर सदा के लिए सो जाने का विचार किया। उसी मस्जिद में एक मौलवी ने आपको देखा और सारी बात पूछी। आपने सारी बात बताई। फिर उन्होंने एक चिट्ठी लिखी जो नवाब साहब के लिए थी और कहा, "अलाउद्दीन तुम नवाब साहब को यह चिट्ठी दे देना।" अलाउद्दीन साहब दिन रात नवाब साहब से मिलने का प्रयास करने लगे परन्तु बहुत दिनों तक नवाब बहादुर से भेट नहीं हुयी। एक दिन नवाब बहादुर नाटक देखने थियेटर जा रहे थे। उसी समय अलाउद्दीन खाँ उनकी बगधी के सामने कूद पड़े। सिपाहियों ने उन्हें पकड़ा तो उन्होंने चिट्ठी निकालकर नवाब साहब को दी। तब नवाब साहब ने आपके संगीत शिक्षण के लिए अपने दरबारी संगीतज्ञ उस्ताद वज़ीर खाँ साहब से सिफारिश की। वज़ीर खाँ ने अलाउद्दीन खाँ को अपना गण्डा बांध शागिर्द बना लिया।

पर इस बार भी अलाउद्दीन को निराशा मिली। आप अपने गुरु के घर के बाहर घंटो—घंटो खड़े रहते पर आपके गुरु आप पर ध्यान नहीं देते थे। यह क्रम लगभग 30 महीनों तक चला।

इसी समय उस्ताद वज़ीर खाँ के एक अन्य शागिर्द उस्ताद हमीर अली ने रामपुर में एक वायदवृन्द तैयार करवाया जिसमें बड़े—बड़े उस्तादों को नौकरी पर रखा था। उसमें बैंड मास्टर लखनऊ के ध्रुपद गायक खलीफा दौलत खाँ के पुत्र राजा हुसैन खाँ थे। अलाउद्दीन उनके पास गये और उन्हें अपना वायलिन वादन सुनाया। वे अलाउद्दीन खाँ से बहुत प्रसन्न हुये और बारह रूपये प्रतिमाह पर नौकरी में रख लिया। धीरे—धीरे वहाँ के कलाकार आपसे प्रभावित होने लगे। वे आपको अपने घर बुलाते, मेहमान नवाजी करते और अपनी चीजों को सुनाते व आपकी चीजें सुनते। इस प्रकार आपने मुहम्मद हुसैन (बीनकार), हैदर खाँ (ध्रुपद गायक), मुश्ताक हुसैन (ध्रुपद गायक), असद खाँ (ध्रुपद गायन, सरोद), हाफिज, हीरालाल, बहादुर अली इत्यादि से ध्रुपद तथा ख्याल की कई 'चीजें' को सीखा।

अलाउद्दीन खाँ रामपुर बैंड की रचनाओं में मुहम्मद हुसैन

खाँ के ध्रुपद बंदिशों का प्रयोग अधिक करते थे।

इस प्रकार ढाई वर्षों तक आप गुरु के घर जाकर प्रतीक्षा करते, फिर बैंड में आकर नौकरी करते तथा पुनः गुरु के पास जाकर प्रतीक्षा करते।

एक बार पारिवारिक परिस्थितियों वश आपके भाई आफताबुद्दीन आपको लेने के लिए रामपुर आये, व वजीर खाँ जी से आपके विषय में पूछा। फिर वजीर खाँ जी को आपका स्मरण हुआ, उन्होंने आपको बुलावाया और कहा, “तुम्हें घर जाने की इच्छा है?” जवाब मिला, “शिक्षा पूरी नहीं हुई, घर किस प्रकार जाऊँगा?” इसके बाद उस्ताद वजीर खाँ से आपका शिक्षण कार्य आरम्भ हुआ और 10 वर्षों तक चला।

फिर आपके गुरु ने देश के विभिन्न स्थानों पर अपना कार्यक्रम देने की आज्ञा दी और उस्ताद उलाउद्दीन खाँ साहब ने अपनी प्रतिभा का लोहा कई कार्यक्रमों में मनवाया। किसी कार्यक्रम में आपकी भेंट श्यामलाल क्षेत्री जी से हुई। श्यामलाल से आपको ज्ञात हुआ कि मैहर के महाराजा बृजनाथ सिंह जूदेव एक ऐसे गुरु की तलाश में हैं जिन्हें कई वाद्यों के वादन का ज्ञान है। इसके बाद श्यामलाल जी ने ही आपके मैहर जाने की व्यवस्था की।

अलाउद्दीन खाँ साहब 7 नवम्बर 1919 में मैहर आ गये। जहाँ आपकी भेंट मैहर महाराजा बृजनाथ सिंह जूदेव से हुई। महाराजा के निवेदन पर आपने शहनाई, इसराज, बाँसुरी, क्लोरेनेट, सरोद, वायलिन, मृदंग, तबला तथा वजीर खाँ साहब से सीखी हुई सरोद, सुरसिंगार, सुरबहार, रबाब आदि वाद्यों को बजाया। आपसे अत्यन्त प्रसन्न होकर महाराजा आपके शिष्य बन गये और अपने दरबार में मंत्री के बाद का स्थान दिया।

इसके पश्चात् आप मैहर में रहकर ही संगीत साधना

करने लगे। यहीं आपने मैहर महाराजा की सहायता से ‘मैहर-बैंड’ की स्थापना की और कई स्थानों पर इसका प्रदर्शन करवाया। इन सबके बाद भी आपका मन मैहर में नहीं लगता था। इसी समय (1920–1926) रामपुर से आपके गुरु उस्ताद वजीर खाँ का संदेश आया कि उनके पुत्र की मृत्यु हो गयी है अतः आप रामपुर चले गये वहाँ वजीर साहब ने अपने घर की खास दी जाने वाली तामिल आपको दी। तीन वर्षों तक यह विशेष शिक्षा चलती रही, परन्तु दुर्भाग्यवश आपके गुरुजी का स्वर्गवास हो गया।

अब तक, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ अनेक स्थानों पर अपने सरोद व वॉयलिन के कार्यक्रम दे चुके थे और इन्होंने संगीत के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित कर ली थी। पं. तिमिर बरन आपके वादन से प्रभावित होकर आपके प्रथम शिष्य बने। पं. तिमिर बरन उन दिनों पं. उदयशंकर के नृत्य समूह में संगीत-निर्देशन का कार्य किया करते थे। पं. तिमिर बरन ने अलाउद्दीन खाँ साहब से पं. उदयशंकर के नृत्य समूह में संगीत निर्देशक का पद स्वीकारने की विनती की। तत्पश्चात् मैहर महाराजा की अनुमति से 1937 में आप पं. उदयशंकर की नृत्य मण्डली के साथ जुड़ गये। इस अवधि में देश-विदेश में कई स्थानों पर आपने सरोद एवं वायलिन की भी प्रस्तुतियाँ दी। तत्पश्चात् आप मैहर आ गये और आजीवन वहाँ रहें।

अपनी संगीत दक्षता के कारण आपको आजीवन कई पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुये। जिसमें पद्मविभूषण, सितारे हिन्दू, संगीत नायक, डॉक्टर ऑफ म्यूजिक, देशिकोत्तम आदि उल्लेखनीय हैं। आपने भारतीय संगीत के क्षेत्र में एक समृद्ध वादन शैली की परम्परा कायम की, साथ ही कई वाद्यों का भी निर्माण किया। 6 सितम्बर, 1972 को बाबा की पवित्र आत्मा परमात्मा में विलीन हो गयी।

उत्तराखण्ड के न्यायप्रिय देवः गौर भैरव

दीपि अग्रवाल



गौर भैरव यानि गोलू देवता के लिए गूँजता जैकारा खींचता है, देश विदेश के लोगों को, अनगिनत घण्टियों से सुसज्जित मंदिर की ओर, जो बसा है उत्तराखण्ड की देवभूमि के पूर्वी गढ़वाल क्षेत्र के नैनीताल जिले में भवाली से 5 किलोमीटर दूर घोड़ाखाल में। यह मंदिर, समुद्र तल से 2000 मीटर की ऊँचाई पर सैनिक स्कूल के पास पड़ता है।

इस शांत, रमणीक और धार्मिक स्थल पर गोलू देवता को न्याय का देवता, गॉड ऑफ जस्टिस के रूप में पूजा जाता है। जहां और मंदिरों में जाकर मुराद मांगनी पड़ती है, वहाँ इस मंदिर में केवल चिट्ठी भेजने से मुराद पूरी हो जाती है। लोग यहाँ स्टाम्प पेपर पर लिख कर मन्त्रों

माँगते हैं। कहते हैं, नवविवाहित यहाँ आकार गोलू देवता के दर्शन करते हैं तो उनका वैवाहिक जीवन खुशहाल रहता है। मन्त्र पूरी होने पर भक्त मंदिर में घंटी बाँधते हैं और सोलह शृंगार की सामग्री चढ़ाते हैं। इस मंदिर में घोड़े पर सवार धनुष-बाण लिए गोलू देवता की प्रतिमा है। कहते हैं अदालत जिसका सही न्याय नहीं कर पाती है वह अपनी अर्जी गोलू देवता के दरबार में लगाता है और समय आने पर न्याय पाता है।

इस मंदिर को 'घण्टियों वाला मंदिर' भी कहा जाता है। घोड़ाखाल का शाब्दिक अर्थ है घोड़े के लिए तालाब। इस मंदिर के पुजारी का कहना है कि यह मंदिर 19वीं सदी के पहले दशक में बना है लेकिन इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

ऐसी मान्यता है कि गोलू देवता अपने राज्य के लोगों से मिलने के लिए अपने घोड़े से दूर—दूर जाकर गोलू दरबार लगाते थे और लोगों की समस्या सुनकर उनका समाधान करते थे। यहाँ के लोगों के दिलों में उनके लिए विशेष स्थान है और वे अपने साधारण जीवन, ब्रह्मचर्य और न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध हैं। देवभूमि उत्तराखण्ड में गोलू देवता के इस मंदिर के अलावा तीन प्रसिद्ध मंदिर और भी हैं—

1. गोलू देवता, चित्ताई, अल्मोड़ा
2. गैराड के गोलू देवता
3. चंपावत, गोलू मंदिर

चितई का मंदिर

उत्तराखण्ड के गोलू देवता के चारों मंदिरों में से चितई का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ गोलू देवता राजवंशी रूप में पूजे जाते हैं। यह मंदिर अल्मोड़ा से आठ किलोमीटर दूर पिथौरागढ़ हाइवे पर है। मंदिर के अंदर सफेद घोड़े पर सवार सिर पर सफेद पगड़ी बांधे गोलू देवता की मूर्ति विराजमान है, जिसके हाथ में धनुष बाण है।

गैराड के गोलू देवता:

गैराड के गोलू देवता भिनसर वाइल्ड लाइफ सैंचुरी के मुख्य दरवाजे से दो किलोमीटर की दूरी पर है और अल्मोड़ा से करीब 15 किलोमीटर दूर है। यहाँ भी गोलू देवता को न्याय का देवता माना गया है।

चंपावत के गोलज्यु का मंदिर

यह मंदिर पिथौरागढ़ के मुख्यालय से 76 किलोमीटर दूर चंपावत नामक गाँव में, समुद्र तल से 1615 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। यह गाँव नन्द वंश के शासकों के राजधानी और अपनी प्राकृतिक सुंदरता और प्रसिद्ध मंदिरों के लिए जाना जाता है। जनश्रुति के अनुसार चंपावत का गोलू देवता का मंदिर ही मूल मंदिर है घोड़खाल और चितई के मंदिर उसकी शाखाएँ हैं। इस मंदिर के अत्यंत प्राचीन होने के भी बहुत से सबूत मिलते हैं।

गोलू देवता के अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे— गोरैया, गोलू ग्वाल, रतकोट गोलू, कृष्ण अवतारी, बालाधारी, गोरैया, दूधाधारी, निरंकारी, हरिया गोलू, चमनधारी, द्वा गोलू, घुघुतिया गोलू आदि। गोरिया नाम उनके गौरी घाट पर पाये जाने के कारण मिला और गौर भैरव नाम उनके अत्यंत सफेद रंग होने के कारण मिला।

गोलू देवता को शिव का रूप माना जाता है और उनके भाई काल्य देवता को भैरव का रूप माना जाता है। कुमायूं क्षेत्र में इन्हे, कुल देवता, इष्ट देवता और न्याय का देवता की उपाधि प्राप्त है। इनकी पूजा में धी, दूध, दही, हलवा— पूरी, पकौड़ी चढ़ाई जाती है। यहाँ बकरे की बलि भी चढ़ती है और बकरे का सिर देवता को अर्पण कर बाकी बकरा प्रसाद के रूप में वितरित होता



है। बकरे 2 होने चाहिए और खास कर उनका रंग काला हो। दोनों में से एक तो मंदिर के अन्दर और एक बाहर जंगलों में काटा जाता है। गोलू देवता को सफेद कपड़ा, सफेद पगड़ी और सफेद शाल चढ़ाया जाता है। मंदिर में 3 दिन या 9 दिन पूजा का विधान है। सावन मास में पूजा का विशेष महत्व है। कैंतुरी काल की लोक कथाओं को उजागर करने वाले लोकगीत जागर में उल्लेख है कि गोलू देवता का दरबार आज भी लगता है और वे किसी भी रूप में आकर आज भी समस्या का समाधान करते हैं।

गोलू देवता के बारे में कई लोककथाएँ प्रचलित हैं, जैसे— एक कथा के अनुसार गोलू देव चंद राजा बाज़बहादुर(1638–1678) की सेना में जनरल थे और युद्ध में बहादुरी से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। दूसरी कथा के अनुसार, कालबिष्ट नामक व्यक्ति को टुरा गाँव में पैदा हुआ। वह बालक बहुत वीर और गरीबों और दमितों की सहायता करने वाला था। युवा होते होते कालबिष्ट ने सभी शैतानों को मार गिराया लेकिन भिनसर के राजा ने झूठे शक में कालबिष्ट का सिर काट डाला। उनका सिर कापरखान नामक जगह पर गिरा जिसे आजकल भिनसर कहते हैं और बाकी शरीर दाना गोलू नामक जगह पर गिरा जहाँ गोलू देवता का सबसे प्राचीन मंदिर है।

एक अन्य कथा में घोड़खाल में स्थित गोलू देव कैसे यहाँ

आकर विराजमान हुए इसकी कथा है। वर्षों पूर्व घोड़खाल के पास महरा गाँव की एक स्त्री को उसके परिवार के लोग बहुत सताते थे। अतरु उसने अपने पीहर चंपावत स्थित गोलू देवता से प्रार्थना की कि वे उसके साथ उसके गाँव चले। अतः गोलू देवता यहाँ आकार विराजमान हुए और उस स्त्री की रक्षा की। शिव—पुराण, रुद्र—संहिता, पार्वती खंड में भी गोलू देवता का वर्णन है।

द्वापर युग के अंत में देवी रुक्मणी ने प्रधुम्न को जन्म दिया। गढ़ी चंपावत के राजा बाणसुर के मंत्री सम्बर ने प्रधुम्न का अपहरण कर लिया था। कृष्ण ने अपने बेटे की रक्षा के लिए माँ जगदंबा से सहायता मांगी। जगदंबा ने कृष्ण को कहा कि चिंता की कोई बात नहीं है और उन्होंने गौर भैरव और काल भैरव को प्रधुम्न को बचाने के लिए भेज दिया। कृष्ण प्रधुम्न को लेने गढ़ी चंपावत पहुंचे और वहाँ पुत्र को सकुशल पाकर गौर भैरव को वरदान दिया कि जिस तरह गौर भैरव ने कृष्ण के पुत्र की रक्षा की है उसी तरह आज के बाद वे सम्पूर्ण हिमालय खंड के अधिपति बनकर सारे क्षेत्र की रक्षा करेंगे और उनकी मान्यता न्यायाधिकारी देवता के रूप में होगी।

गोलू देवता की सबसे महत्वपूर्ण और प्रचलित कथा है कि गोलू देव कत्यूरी के राजा झाल राय (हलराय के पुत्र) और रानी कलिंका के पुत्र है। रानी के भाई हरीशाचन्द्र देवज्यू और सोम देवज्यू हैं। राजा के कलिंका से पहले सात रानियाँ थीं लेकिन दैववश एक भी संतान नहीं थी। राजा ने संतान की बाबत ज्योतिषी से पूछा तो उसने राजा को भैरव की पूजा करने का सुझाव दिया। राजा ने पूजा की और भैरव ने प्रसन्न होकर राजा को सपने में दर्शन दिये और कहा कि वे राजा के घर स्वयं जन्म लेंगे। एक दिन राजा अपने सैनिकों के साथ आखेट खेलने गए। रास्ते में प्यास लगी तो सैनिकों को पानी लाने भेजा। बहुत देर तक सैनिक नहीं आए तो राजा खुद देखने गए कि क्या बात है। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि एक तालाब के किनारे सारे सैनिक बेहोश पड़े हैं। राजा जैसे ही तालाब से पानी पीने के लिए नीचे झुके आवाज आई-

“यह तालाब मेरा है यदि आपने मेरी बात नहीं मानी तो आपका भी हाल सैनिकों जैसा होगा।”



तभी वहाँ एक स्त्री कलिंका प्रकट हुई और उसने राजा की वीरता की परीक्षा लेने के लिये कहा कि दो लड़ते हुए भैंसों को अलग करके दिखाओं। राजा को कुछ समझ नहीं आया और तभी रानी ने दोनों भैंसों को अलग कर दिया। राजा कलिंका से बहुत प्रभावित हुए। तभी वहाँ पंचदेव पधारे। राजा ने उनसे कलिंका का हाथ मांगा और पंचदेव ने रानी कलिंका और झाल राय का विवाह सम्पन्न करवाया और पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। कुछ समय बाद आठवीं रानी कलिंका ने पुत्र को जन्म दिया। लेकिन अन्य रानियों ने इर्ष्यावश रानी की बगल में बच्चे के स्थान पर पत्थर रख दिया और बच्चे को बक्से में डालकर नदी में बहा दिया। वह बक्सा भाना नामक मछुआरे को मछली पकड़ते हुए मिला और वह उसे घर लेकर आ गया। कहा जाता है कि नन्हे शिशु को देखकर, भाना की बांझ गाय के थनों में भी दूध आ गया था। थोड़ा बड़े होने पर भाना ने बालक को लकड़ी का घोड़ा बना कर दिया। कहते हैं, जब बालक उस पर बैठा तो वह भी सरपट दौड़ने लगा और गाँव वाले चकित रह

गए।

एक दिन वह बालक उस घोड़े को पानी पिलाने नदी पर ले गया। वहाँ राजा की सातों रानियाँ पहले से मौजूद थी। एक रानी ने उपहास करते हुए कहा कि लकड़ी का घोड़ा भी कहीं पानी पी सकता है। तब बालक ने प्रत्युत्तर दिया कि जब एक स्त्री पत्थर को जन्म दे सकती है तो लकड़ी का घोड़ा पानी क्यों नहीं पी सकता। सारी रानियाँ फक्क पड़ गई। बात उड़ते उड़ते राजा तक पहुँची और राजा ने बालक को बुलाकर सारी कहानी पूछी। बालक ने सब सच बताया। राजा ने बालक से सच्चाई का प्रमाण मांगा तो बालक ने कहा

"अगर मैं सचमुच कलिंका का पुत्र हूँ तो इसी पल मेरी माता के वक्ष से दूध की धारा फूट कर मेरे मुँह में चली जाये" और वैसा ही हुआ। सारी प्रजा जयजयकार करने लगी। राजा ने रानियों को सजा दी और बालक का राजतिलक किया। वही बालक आज गोलू देवता के नाम से प्रसिद्ध है। गोलू देवता ने अपनी माँ से वह सिलबट्टा भी लाने को कहा जिसे वह पुत्र समझ कर पाल रही थी सिलबट्टे पर पड़ी माँ के आंसुओं की धार से दोनों दो सुंदर नौजवान में परिवर्तित हो गए और गोलू देवता ने उन्हे आशीर्वाद दिया कि उन्हे भी कभी गोलू देवता से अलग नहीं किया जाएगा आज भी चंपावत के मंदिर के बाहर खड़े दोनों दरबारी उस सिलबट्टे के ही प्रतिरूप हैं।

जय न्याय देवता गोलू आपकी जय हो !

आस्था व्यक्ति के निराश मन में आशा का संचार करती है और आगे जीने की प्रेरणा देती है। यह कारण है कि आदिकाल से आज के समय तक, किसी भी देश, जाति और धर्म का व्यक्ति हो व्यक्ति की किसी न किसी पर आस्था होती है जो उसके कष्टों को समझेगा और उससे उसको उबार लेगा। छोटे बच्चे का यह विश्वास अपनी माँ पर होता है, बड़ा व्यक्ति भी किसी न किसी पर विश्वास रखता है जो उसे उसके कष्टों से मुक्ति



दिलाएगा। गोलू देवता ऐसे ही है जिनपर लोगों को विश्वास है कि वे न्याय के पक्षधर हैं, उनकी शरण में जाने से वे न्याय दिला सकेंगे और मेरा काम बन जाएगा। अगर आप गोलू देवता के मंदिर में कभी जाएँ तो आप देखेंगे कि मंदिर में लटकी हुई हज़ारों घंटियाँ और घंटे यह आपको संकेत देंगे यहाँ आकर कितनों की मानताएं पूरी हुई हैं जिसके कारण उन्होंने अपनी मानता पूरी होने पर मंदिर में घंटा चढ़ाकर अपनी आस्था गोलू देवता के प्रति प्रगट की है।

दीप्ति अग्रवाल का जन्म नारनौल (हरियाणा) में हुआ। उनकी शिक्षा—दीक्षा हरियाणा और दिल्ली में हुई द्यउन्होंने इंग्लिश, हिंदी और समाजकार्य में एम.ए. की उपाधियां प्राप्त कीद्य वे श्वारतीय डायस्पोरा संस्कृति और हिंदी साहित्य में—फीजी, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, त्रिनिदाद, मारीशस और गयानाके सन्दर्भ में दिल्ली विश्वविद्यालय से शोध कर रही हैंद्य वह दिल्लीविश्वविद्यालय में अतिथि प्राध्यापक के तौर पर अध्यापन भी कर रही हैंद्य उनका संपर्क सूत्र है— ई—127, फेज—1, अशोक विहार, दिल्ली दूरभाष; 9818521188, ई मेल deeptiaggarwalmail@gmail.com

भारतीय विवाह संस्कार

डॉ. नीरा श्रीनारायण



विश्व के मानचित्र पर एक दिव्यपुंज आलोकित है—भारत। हमारी सांस्कृतिक आध्यात्मिक एवं भावनात्मक विरासत को सदियों से संजोये, जिसके संस्कारों से हर भारतीय का जीवन अलंकृत है। ये संस्कार हमारे वेदों के आधार पर दिशा निर्देशन के सुन्दर रेशमी धागों से बंधे लगते हैं।

भारत में जन्म से मृत्यु तक हर (वैदिक धर्मावलम्बी) इन संस्कारों से अपने को सुमार्गी एवं सुरक्षित अनुभव करता आया है। वैदिक संस्कार सोलह है। इनमें से चौदहवें स्थान पर सुशोभित है—विवाह संस्कार, सभावन (13हवाँ संस्कार) एवं अवसान्य धाम (वानप्रस्थ) के बीच पीढ़ियों को जोड़ने वाला यह स्वरथ्य समाज के विकास का भी परिचायक है।

विवाह संस्कार द्वारा वर—वधू गृहस्थ—आश्रम में प्रवेश करते हैं। दोनों स्वयं अपने आध्यात्मिक एवं मानसिक

विकास, मातृ—पितृ ऋण को चुकाकर वंश—वृद्धि, करके गृहस्थ जीवन को सफल और सार्थक बनाने का प्रयास कर, सृष्टि के विकास में अपना संस्कारयुक्त योगदान देते हैं।

अपने वास्तविक स्वरूप में शास्त्रों में वर्णित एवं मान्य ब्रह्म, दैव एवं आर्य विवाह हैं, जो नारद पुराण में भी वर्णित है, शुभ मुहूर्त में अग्नि को साक्षी मानकर सप्तपदी एवं कन्यादान द्वारा पाणिगृहण संस्कार अति शुभ एवं मंगलदायक माना गया है।

शास्त्रों के अनुसार ब्रह्म देव—आर्य यही मान्य एवं उत्तम श्रेणी के माने गये, जिसमें माता पिता की सहमति, सुपात्र—सुपात्री का चयन, परिवार एवं समाज के सदस्यों की उपरिथिति शोभा बढ़ाने एवं साक्ष्य का निर्वाह करके इस प्रकार के विवाह को शक्ति—अर्थ प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा का सुन्दर समन्वय तो होता ही था, एक मर्यादित सनातन परम्परा का प्रतिनिधित्व भी होता रहा है। आज अनेक वर—कन्या उपरोक्त तीनों प्रकार के संस्कारों में से किसी ए क को सहर्ष अपना भी रहे हैं।

ब्रह्म विवाह:—दोनों पक्ष की सहमति से समान वर्ग के सुयोग्ज्ञ वर से कन्या का विवाह निश्चित कर देना 'ब्रह्म विवाह' कहलाता है। सामान्यतः इस विवाह के बाद कन्या को आभूषणयुक्त करके विदा किया जाता है। आज का विवाह 'ब्रह्म विवाह' का ही रूप है।

दैव विवाह:—किसी सेवा कार्य (विशेषतः धार्मिक अनुष्टान) में व्यय हुये, स्वर्जित धनसहित कन्या को दान में देना 'दैव विवाह' कहलाता है।

आर्य विवाह:—कन्या—पक्ष वालों को कन्या का अनमोल

मूल्य दे कर (सामान्यतः गौदान करके) कन्या का विवाह 'आर्य विवाह' कहलाता है।

जिन विवाहों को निम्न श्रेणी एवं निंदनीय माना गया है उनमें गंधर्व, प्रजापत्य, राक्षस, पिशाच विवाह हैं।

गंधर्व विवाह:—गंधर्व विवाह अर्थात् आपसी इच्छा एवं पसंद किया गया प्रेम विवाह। इतिहास एवं धार्मिक ग्रंथ—दुष्यन्त—शकुन्तला, पुरुरवा—उर्वशी, वासवदत्ता—उदयन, का एक दूसरे प्रति अपना लगाव होना। एक स्वाभाविक सा भाव है। विगत तीन दशकों से पहले कुछ पारिवारिक भय, प्रतिष्ठा, सामाजिक तिरस्कार एवं असुरक्षा का भाव होता था, किन्तु आज की आधुनिक सामाजिक मान्यताओं में गंधर्व अर्थात् प्रेम विवाह एक साधारण सी बात हो गई है। निमंत्रण पत्र एवं सूचना में सजातीय नाम आश्चर्य जगा देते हैं। समय भाग रहा है, गति का चक्र तेजी से धूम रहा है। ये प्रतिस्पर्धा स्तर एवं अधिक से अधिक धन कमाने की सोच है, जो आंकड़ों के अनुसार 17 से 25 वर्ष के युवक—युवतियों के बीच का विषय बन गया है। माता—पिता के सपने, आशायें, बच्चों को अच्छे से अच्छा जीवन साथी दिलाने के प्रयास, नगण्य हैं। बच्चों की इच्छा सर्वोपरि। ना तो हाथ पीले कर कन्यादान का, ना परछनकर बहू का गृह प्रवेश। ये संस्कार अन्य निम्न श्रेणी विवाह संस्कार में ना आकर एक परिष्कृत रूप ले चुका है। इस विवाह को वैदिक रूप से सप्तपदी से भी जोड़ दिया जाता है। माता—पिता पर वर—वधू खोजने का, दहेज, सँपति बंटवारे, रिश्तों के दोनों पक्षों के अविभावकों के नाज—नखरे, रस्मरिवाज, किसी का बोझ नहीं झेलना पड़ता। बहुत कुछ प्रेमविवाह सफल और शोभनीय भी होते हैं। रीतिरिवाज एवं तय किये विवाह के पीछे परिवार—परिजनों द्वारा सुरक्षा रहती है। किन्तु एक विरोधाभास यहाँ भी दिखाई देता है। आवश्यक नहीं कि जन्म, नक्षत्र, कुंडली, योग, कुल गोत्र व छत्तीस गुण मिल जाने पर भी विधिनुसार सम्पन्न हुए विवाह के बाद दम्पत्ति एवं परिवार में मेल, सामंजस्य, लगाव एवं सम्मान का बना रहे तथा पूरे जीवन सम्बन्धों में कटुता बनी रहती है।

प्रजापत्य विवाह:—वैदिक संस्कार रहित, असुर, गंधर्व, राक्षस एवं पिशाच को शास्त्र उचित या उत्तम श्रेणी में नहीं लाते एवं निन्दनीय भी मानते हैं। प्रजापत्य विवाह

में वरवधू दोनों की इच्छा विरुद्ध, विशेषकर वधू की इच्छा को बिल्कुल नकार कर वधू का विक्रय (बेच) कर भी उसके कुल वर्ग से उच्च स्तर के वर से कर देना—यह प्रथा आज कुछ आदिवासी अथवा संपूर्ण उत्तरपूर्वी एवं दक्षिण भारत में आर्थिक एवं सुरक्षा की भावना से गुप्त रूप में प्रचलित है। एक प्रान्त से लाकर दूसरे प्रान्त में धन लेकर कन्या को किसी भी पात्र के हाथ सौंप देते हैं। बेहद धिनौनी एवं निष्कृत रीति कभी गुप्त तथा कभी उजागर होती है।

असुर विवाह:—बहुप्रचलित असुर दहेज, आज की ना होकर शास्त्रों में भी वर्णित है। जहाँ ब्रह्म विवाह में मात्र कन्या ना इच्छानुसार उपहार स्वरूप आभूषण, सोनेचांदी के सिक्के, गाय बैल, देकर बेटी को उपहार स्वरूप कन्यादान के स्वरूप में स्वेच्छा से देते थे। किन्तु दहेज मांगने की रीति को 'असुर' कहा गया। आश्चर्य एवं हास्यपद है कि शास्त्रों एवं वैदिक नियमों को अर्थहीन एवं रुद्धिवादी परंपरा कहा, वहीं आधुनिक भारतीय

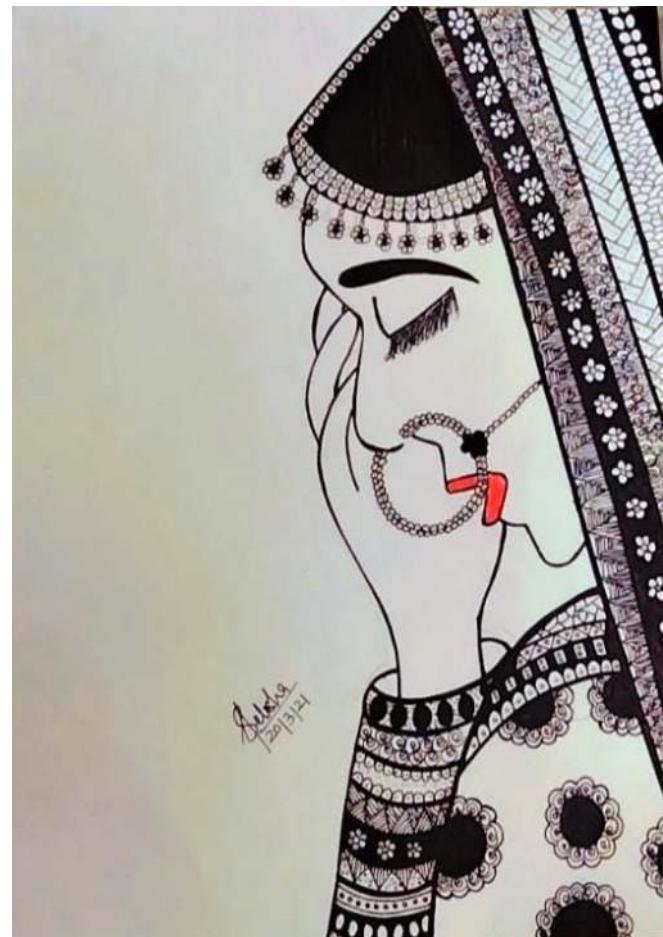


समाज अपने सोच एवं स्वरूप को भले ही आदर्श मानता हो, किन्तु हजारों वर्ष पहले के असुर विवाह का रूप और भी भयंकर होकर समाज में अड़िग खड़ा है। योग्य स्वस्थ, सुन्दर, संस्कारित बेटियों के संबंध दहेज की वेदी पर आहुति बन रहे हैं। कुछ प्रतिशत ऐसे वरपक्ष के लोग हैं, जो कन्या-परिवार-संस्कार एवं सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित (भले ही वो धनी ना हों) परिवार से पुत्र का विवाह बिना किसी मांग (दहेज) के करते हों। भावना-संदेशों एवं बड़ी सुधारात्मक सोच के बहुरूपियों बड़े उद्योगपति, व्यवसायी एवं अधिकारी, करोड़ों तक बेटी से विवाह में, अप्रत्यक्ष दहेज देकर, एक द्वीप पर सगाई दूसरे द्वीप में विवाह, समुद्रतट से आये व्यवसायी पर्वती क्षेत्रों, में जाकर न केवल मंडप वरन् पूरे क्षेत्र का रूप बदल देते हैं। ऊँचे लोगों की ऊँची बातें। हीरे पन्ने से सजा बेटे का मुकुट बहू के आभूषण जल-थल पर परोसे खाने का व्यंजन, मदिरा और कीमती उपहार अभिजात्य वर्ग का अधिकार बन चुका है।

वास्तव में कन्यादान के समय जो आभूषण एवं संपत्ति कन्या विवाह में पितापक्ष से प्राप्त करती थी वह उसका “स्त्रीधन” होता था जो समय पड़ने पर बेटी-पति की सलाह से व्यय करती थी। पशुओं का उपहार कन्या को ससुराल के, और भी सम्पन्नता लाकर सद् उपयुक्त होता था। पति पक्ष कुछ भी मांग नहीं रखता था। कन्यादान माता पिता हाथ में कुश हल्दी, चावल और सामर्थ्य भर मुद्रा अथवा भेंट करके रखता था और पारिग्रह फेरे सब सम्पन्न। समाज को विकृत रूप देने में सबसे अधिक इस स्त्रीधन का विकराल रूप असुर विवाह को यर्थात् रूप देता जा रहा है। दहेज हत्या अलगाव, विवाद, ससुराल से निष्कासन, ये सब असुर विवाह के ही रूप बन गये हैं।

शास्त्रों में दहेज शब्द का कोई वर्णन नहीं है। दहेज का आधुनिक रूप, उपहारों और ‘स्त्रीधन’ को अर्थहीन कहकर मात्र वधू पक्ष को प्रताड़ित एवं विवश करके धन उपहार प्राप्त करना ही बनता जा रहा है। एक संकीर्ण एवं सामाजिक विकृति का रूप है।

कई वर्ष पहले एक सामाजिक सुधार की दृष्टि से विधेयक बना, पारित हुआ और पीड़ित पक्ष, योग्य कन्याओं के साधारण स्थिति की अविभावकों को राहत देना भी समझा गया। इस विधेयक के अनुसार दहेज लेना ही नहीं, देना भी दण्डनीय घोषित किया गया।



मीडिया, सामाजिक संस्थाओं एवं परिवारों ने बड़ा सहयोग दिया। विधेयक के अन्तर्गत न केवल दहेज देने वाला, वरन् इसके लिए उत्प्रेरक के लिए भी कठोर-दण्ड की घोषणा की गई। आई.पी.सी. के द्वारा मान्य दहेज विरोधी अधिनियम के अंतर्गत दंडित (लेना-देना) दहेज लेने वाले अधिक किन्तु देने वाले पक्षों की संख्या तुलनात्मक रूप से, कम आंकी गई है।” समाज में एक नकारात्मक उत्तर थे यह आया कि प्रत्यक्ष रूप में, माता पिता दहेज ना देकर सगे संबंधियों, मित्रगण, सहकर्मियों अपना ही धन देकर उपहार रूप में पर्वतित कर वर पक्ष का घर भर देते हैं— उपहारों पर दंड नहीं। ऐसी स्थिति में दहेजदानव से पीड़ित केवल मध्यम एवं निम्न मध्यम वर्ग ही रह जाता है। शास्त्रों से छलावा करने वाले ऐसे शब्द “दहेज” को निष्पाण कर देना ही इस असुर विवाह का अन्त करने का एक प्रयास समय की मांग होनी चाहिए। “जब अनाचार बढ़े तब सदाचार का मौन रहना ठीक नहीं।

राक्षस विवाहः—अन्य निम्न श्रेणी में आने वाले विवाहों में 'संस्कार' शब्द अर्थहीन ही होता है। प्राचीन काल में विगत दो सौ वर्ष पहले तक एक साधारण सी बात थी, कि शत्रु पराजित करने के बाद विजयी पक्ष शत्रु की कीमती ढाल, तलवार, आभूषण इत्यादि के साथ उस युद्धभूमि में मनचाही कन्या/युवती का अपहरण कर साथ लाकर उससे विवाह कर लेता था। ना कन्या, ना परिजनों की सम्मति न कोई सम्मान। केवल युद्धक्षेत्र से ही नहीं वरन् शक्तिशाली एवं महादुष्ट दंबंग रस्म रिवाज, सहमति—असहमति सब दर किनार कर आज भी यही कार्य करते हैं। ये विवाह वर/वरपक्ष की घृणित सोच ही दर्शाता था। आधुनिक भारतीय समाज में अब ऐसी कृप्रथा स्वयं ही अपनी चिता में बहुत कुछ भ्रम हो चुकी है।

अपने सामान्य स्वरूप में ये विवाह के प्रकार प्रचलन में रहे भी, एवं आज भी किसी न किसी रूप में देश के किसी न किसी भाग में चल ही रहे हैं।

अपने असली अर्थ में विवाह एक अत्यन्त शुद्ध सुंदर पवित्र एवं शुभकारी संस्कार है। मध्ययुग से पहले तक उत्तर पूर्वी भारत में वर कन्या का विवाह किसी समस्या रूप में नहीं, वरन् आनंददायी उस परिकल्पना से होता था, जहाँ विदुषी, सुयोग्य, संस्कारित कन्या के सयानी होने पर स्वयंवर, तथा अपनी इच्छानुसार वर चयन कर सकती थी। वर रूप में युवक भी अपनी परख इच्छा, एवं मापदण्ड को माता पिता के समक्ष प्रस्तुत कर सकते थे। शंकर पार्वती विवाह, राम सीता, सबमें सुदृढ़ इच्छा शक्ति के साथ विवाह हुए। श्री दुर्गा सप्तशी के पांचवे अध्याय में चण्ड मुँड के मुख से अम्बिका के रूप की प्रशंसा सुनकर शुभ्म का उनके पास दूत भेजना, और दूत का निराश लौटना। शुभ्म (देवी दुर्गा से) मेरे भाई निशुभ की सेवा में आ जाओ, क्योंकि हम लोग (शुभ्म—निशुभ) तुम्हें संसार की स्त्रियों में रत्न मांगते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ।" देवी का उत्तरः—इस विषय में मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है उसे मिथ्या कैसे करूँ? मैंने अपनी अल्पबुद्धि के कारण जो प्रतिज्ञा है उसे सुनो!! जो मुझे संग्राम में जीत लेगा, जो मेरे अभिमान को चूर्ण कर देगा, तथा संसार में जो मेरे समान बलवान होगा, वही मेरा स्वामी होगा।।"

शक्ति में देवी ने भगवान शिव को ही अपने से और भी

शक्तिशाली, अविनाशी, अविकारी मान उन्हें वर मान लिया था। रामायण काल में सीता द्वारा शिव धनुष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखते हुए पिता राजा जनक ने बेटी की शक्ति का परिचय हो जाने के पश्चात प्रतियोगिता रखी कि जो व्यक्ति शिव धनुष को उठाकर उस पर प्रल्या चढ़ा देगा उसी के साथ सीता का विवाह किया जायेगा। इन उदाहरणों से पता चलता है कि बेटी के गुणों के अनुसार उसके लिए सुपात्र का चयन आवश्यक था।

लगभग संपूर्ण भारत में संस्कारों के साथ हुए विवाह को हिन्दू—मुस्लिम—सिख ईसाई, सभी ने मान्यता के साथ स्वीकारा।

यवनों के आगमन के बाद भारतीय समाज पर ऐसे घने बादल छाये कि लोग बेटियों को छुपाकर रखने लगे। कोई भी सैनिक किसी भी सुन्दर कन्या का अपहरण करने लगा। समाज भयभीत हो उठा, और जल्दी से जल्दी अपनी छोटी बच्चियों को सजातीय वर्ग में ब्याह कर पालकी उठवाने लगा। इन आक्रमणकारियों के लोलुप प्रवृत्तियों ने जन्म दिया बाल विवाह को। पांच सात वर्ष की बेटी का रिश्ता मौखिक, विधिविधान से होने लगा। पति आठ वर्ष का पत्नी सात की। विवाह का अर्थ तो दूर, स्वयं का ही अर्थ नहीं पहचानते ये बच्चे और वर—वधू बन जाते थे।

बारात गई तो पांच दिन ठहरी। ऐसी आयु में कन्या जब विवाह की तैयारी देखती है, तो कुछ समझ नहीं पाती। ये तो उसकी खेलने, झूलने, मां बाप के लाड़ का आनंद उठाने की आयु होती है। ऐसे ही नौ दस वर्ष के बालक को, जिसने घर परिवार गिल्ली डंडा, पतंग, बगीचों से कैरी तोड़ना, गुल्लेल से निशाना लगाने वाला, फिर बाबा दादी का लाड़ला बन धी—बूरे के लड्डूओं का आनंद उठाया हो, उसे तख्ती किताब का आरंभिक ज्ञान ही हुआ रहा हो, वह एक दिन सिर पर मौर लगाकर अपनी बारात ले जायेगा—कैसी अर्थहीन हास्यापद सामाजिक कुरीति को दर्शाता है।

विवाह विधि

संसार में सबसे पुराना धर्म हिन्दू धर्म ही है, जिसकी अनुमानित ऐतिहासिक धरोहर 3000 ईसा पूर्व है। हिन्दू विवाह, विधि—विधान की एक अत्यंत पवित्र विधि है

जिसमें कई कालातीत कर्मकांड और रीति-रिवाजों का समावेश है।

गणेश पूजनः—शास्त्रों पर आधारित आधुनिक सनातन विवाह संस्कार का आरंभ श्री गणेश का नाम लेकर उनकी स्तुति स्मरण करके किया जाता है। श्री गणेश को स्मरण करके:

वक्रतुण्ड महाकाय, सूर्य कोटि संप्रभः

निर्विघ्नम् कुरु ममदेव सर्व कार्येषु सर्वदा ।

अर्थात्, वक्र (टेढ़ी) सूंडवाले, बड़े शरीर वाले, सूर्य की कोटि किरणों से प्रभाव बिखारने वाले, हे देव ! हमारे सारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न करायें ॥

वागदान “सगाई”—सगाई की रस्म विवाह से पूर्व होने वाला एक महत्वपूर्ण रिवाज है। जिसमें होने वाले वर तथा वधू को औपचारिक रूप से आमने-सामने बिठाकर वागदान संस्कार किया जाता है। हिन्दू धर्म में ‘वागदान’ की परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है।

इस रस्म के अंतर्गत वर के परिवार वाले वधू के परिवार वालों को यह वचन देते हैं कि वह उनकी पुत्री को स्वीकार करेंगे तथा भविष्य में उसकी सुरक्षा एवं सुख के लिए पूर्णतः उत्तरदायी होंगे।

तिलकः—तिलक में दोनों परिवारों के आपसी संबंध में महत्वपूर्ण चरण होता है। यह शुभ कार्य अधिकतर वर के निवास पर होता है, जहां वर के माथे पर कन्या का भाई कुमकुम लगाते हैं।

हल्दी एवं तेल चढ़ाने की रस्म—नये/पुरानी रस्म के अनुसार तिलक अथवा विवाह पूर्व आई हल्दी लगाने की प्रथा थी। हल्दी एवं तेल की रस्म विवाह में विशेष स्थान रखती है। इसके आध्यात्मिक, मानसिक एवं वैज्ञानिक प्रभाव भी होते हैं। शुभ रंग पीला, शुद्ध व शान्त है। यह बृहस्पतिदेव का प्रिय रंग है जो ऊर्जा देता, एवं नकारात्मकता को समाप्त करता है। इसलिए यह ईश्वर आराधना का प्रमुख अंग है। चंदन के साथ पिसी हल्दी मस्तिष्क को सन्तुलित एवं शान्त रखती है। वैज्ञानिक रूप से हल्दी हर प्रकार के विकारों एवं संक्रमण से सुरक्षित रखती है। हल्दी सरसों के तेल में मिलाकर दूर्बा

घास से वर-वधू के सिर से पैर तक चढ़ाई एवं उतारी भी जाती है।

मेहँदी लगाने की रस्म: मेहँदी किसी भी उत्तर भारतीय विवाह का अभिन्न अंग है। मेहँदी को किसी भी दुल्हन या विवाहिता द्वारा किये जाने वाले 16 श्रृंगारों में से एक माना जाता है। बचपन से लेकर वधू बनने तक मेहँदी को हाथ में लगाना, रचाना व लंबे समय तक सजी रहना बहुत शुभ माना जाता है। मेहँदी के बिना दुल्हन का श्रृंगार अधूरा माना जाता है।

रतजगे की रस्म:—मेहँदी की रात्रि में वधू पक्ष के यहाँ महिला संगीत का कार्यक्रम प्रायः पूरी रात्रि चलता रहता है जिसे रतजगा कहते हैं। रतजगा में प्रायः महिलाओं द्वारा ढोलक पर लोकगीतों व पारम्परिक गीतों पर नृत्य किया जाता था जिसमें हास्य व श्रृंगार रस का मेल पाया जाता था। आधुनिक परिवेश में डीजे व फिल्मी गीतों का चलन बढ़ता जा रहा है।

बन्नो तेरी अंखिया सुरमे दानी आदि गीत एवं इन पर नृत्य अधिक लोकप्रिय हो चुके हैं।

बारात प्रस्थान: यह कार्यक्रम वर पक्ष के यहाँ होता है। इसमें वर को सिर से पैर तक नये वस्त्रों से सजाते हैं। जिसमें फूफा द्वारा वर को पगड़ी पहनाई जाती है तथा बुआ आरती उतारती है, जीजा पान का बीड़ा खिलाते तथा भाभी काजल लगाती हैं। सभी चाचा-ताऊ व बड़े सगे—संबंधियों वर के पास खड़े होकर इस खुशी में भाग लेते हैं। बहनें नई कटोरियों में राई, नमक मिलाकर नजर उतारने की रस्म करती हैं।

नकटौरा की रस्म: बारात प्रस्थान के पश्चात् वर के यहाँ महिला संगीत का कार्यक्रम प्रायः पूरी रात्रि चलता रहता है जिसे रतजगा/नकटौरा कहते हैं। इसी रस्म से सारी रात महिलाओं द्वारा जागे रहने से घर की सुरक्षा भी होती है। इसमें प्रायः महिलाओं द्वारा ढोलक पर लोकगीतों व पारम्परिक गीतों पर नृत्य किया जाता था जिसमें हास्य व श्रृंगार रस का मेल पाया जाता था।

बारात आगमन: इस कार्यक्रम में विवाह हेतु वर अपने पिता, सगे—संबंधियों एवं मित्रों के साथ दुल्हन के घर पहुँचता है। दुल्हन के माता—पिता, परिवार और मित्रों के साथ तिलक, अक्षत, आरती और मालायें भेंट करते हैं

तथा बारात में आये हुए अतिथियों का आदर सत्कार करते हैं।

द्वार पूजा: विवाह हेतु बारात जब द्वार पर आती है, तो सर्वप्रथम 'वर' का स्वागत—सत्कार किया जाता है। वर पक्ष के बुर्जगों का स्वागत तिलक एवं माला से करके उपहार दिये जाते हैं। तत्पश्चात् कन्यादाता द्वारा दुल्हे को चौकी पर बिठाकर दो कलशों के बीच चाँदी/कलई की थाली में कन्या की थाप लगा एक सफेद कपड़े का थान, नारियल, रोली, चावल, व उपहार दिये जाते हैं। उत्तरी भारत में इस रस्म को खेत लेना भी कहते हैं।

जयमाल: इस कार्यक्रम में दूल्हे को एक ऊँचे सजे स्थान पर बैठा दिया जाता है। तत्पश्चात् वधू अपनी सखी—सहेलियों व महिलाओं के साथ स्टेज पर लायी जाती है। जहाँ दूल्हा और दुल्हन एक दूसरे को फूलों की माला पहनाते हैं, उसके पश्चात पहले वर पक्ष फिर वधू पक्ष वर—वधू को आशीर्वाद देते हैं।

कन्यादान: कन्यादान की रस्म लड़की के माता—पिता के लिए एक बेहद ही भावनात्मक पल होता है। इसमें लड़की के माता—पिता अपनी बेटी के हाथ में पवित्र जल डालकर फिर हल्दी से हाथ पीले करके वर के हाथ में रखते हैं। दुल्हन की साझी के साथ दूल्हे के पटका (दुपट्टे) में गांठ बांधी जाती है जिसमें सुपारी, तांबे के सिक्के, बताशे, चावल एवं फूल होते हैं, जिसे एकता, समृद्धि और प्रसन्नता का प्रतीक माना जाता है।

सप्तपदी (सात फेरे): इस रस्म के बिना विवाह संपूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। मंगल फेरों में दूल्हा—दुल्हन अग्नि के चारों ओर चलते हैं। पहले के तीन फेरों में दुल्हन आगे चलती है जो दैवीय ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करती है। जबकि अंतिम चार फेरों में दूल्हा आगे चलता है, जो संतुलन और पूर्णता को दर्शाता है। दूल्हा—दुल्हन सात फेरों के साथ सात वचन लेते हुए अग्नि को साक्षी मानकर जीवनभर साथ निभाने की कसम खाते हैं।

सात पग: सप्तपदी में पहला पग भोजन व्यवस्था के लिए, दूसरा शक्ति संचय, आहार तथा संयम के लिए, तीसरा धन की प्रबंध व्यवस्था हेतु, चौथा आत्मिक सुख के लिए, पांचवां पशुधन संपदा हेतु, छठा सभी ऋतुओं में

उचित रहन—सहन के लिए, अंतिम 7वें पग में कन्या अपने पति का अनुगमन करते हुए सदैव साथ चलने का वचन लेती है तथा सहर्ष जीवनपर्यंत पति के प्रत्येक कार्य में सहयोग देने की प्रतिज्ञा करती है। इन सात वचनों को पति द्वारा प्रतिज्ञित मानने पर ही वामांग में आना स्वीकारती है।

विदाई: विवाह में विदाई की रस्म सबसे भावपूर्ण होती है। इस रस्म में वर सपरिवार, दुल्हन की विदाई कर अपने घर ले जाता है। घर की चौखट पार करने से पहले, बेटी अपने घर में तीन मुद्दी चावल और सिक्के अपने सिर के ऊपर से फेंकती है, जिसका यह अर्थ हो सकता है कि बेटी घर की लक्ष्मी होती है, अब वह दूसरे घर की लक्ष्मी बनकर जा रही है पर मायके को रिक्त करके नहीं, अपने मायके के धनधान्य की सम्पन्नता की कामना करके ही जा रही है।

सारांश रूप में विवाह एक अत्यन्त प्राचीन वैदिक, संस्कारित, शास्त्राचार के अंतर्गत आती ऐसी रस्म है जिसे भारत में अत्यन्त पवित्र—अटूट और समर्पित आदर्श रूप दिया गया है। समय—काल—विचारों—समाज की गतिशीलता को देखते हुए इसका रूप—स्वरूप बड़ी शीघ्रगति से बदलकर नयी पहिचान ले रहा है। दो परिवारों एवं व्यक्तिगत व्यक्तित्व के पारस्परिक मेल का रूप लेकर आगे बढ़ने का एक महत्वपूर्ण सौपान है। आज के शीघ्रता से बदलते परिवेश एवं भौतिकता से परिपूर्ण जीवन शैली जहाँ आगे बढ़ने, धनोपार्जन, व्यवसायिक प्रतिस्पर्द्धा, बढ़ती महत्वाकांक्षयें, में सुख—सम्पन्नता का आधार भावनात्मक कम, भौतिक अधिक होता जा रहा है ऐसी स्थिति में पुरानी परम्पराओं एवं विचारों का पुर्णआंकलन का समय अब समाज के पास समय कम है, और समाज का हर प्राणी सामाजिक है। इन चरणों से सबही को आगे बढ़ने जीवन को सहज, सरल और अपनी इच्छाओं पर जीने का अधिकार दे रहा है। "विवाह" इन सभी बिन्दुओं से पर उठकर भी समाज में अपना एक स्थान बनाये हुए है, क्योंकि हर सभ्य समाज में आज भी "विवाह" जीवन की मान्य स्थायी, संस्था बन चुकी है। जिससे विवाह द्वारा दो व्यक्तित्व मिलकर रहने, जीने, एवं वंश वृद्धि में अपना योगदान प्रदान करते हैं। जिससे परिवार को यश, कीर्ति, एवं प्रसिद्धि प्राप्त होती रहे। समाजिक इतिहास साक्षी है, विवाह की परम्परा चलती आ रही है और चलती रहेगी।

चिट्ठी : हृदय की व्यथा

सौमिता कुंडु

आदरणीय मां,

मैं जा रही हूं

जा रही हूं और भी सीखने के लिए जैसा तुम चाहती हो ।
तुम सोच रही होंगी कि मैंने ये चिट्ठी मेरे पति या बच्चों
को क्यूँ नहीं लिखी? या फिर खुद के माँ बाप को भी क्यों
नहीं लिखा? क्यों मैंने सिर्फ तुम्हें ही लिखा?

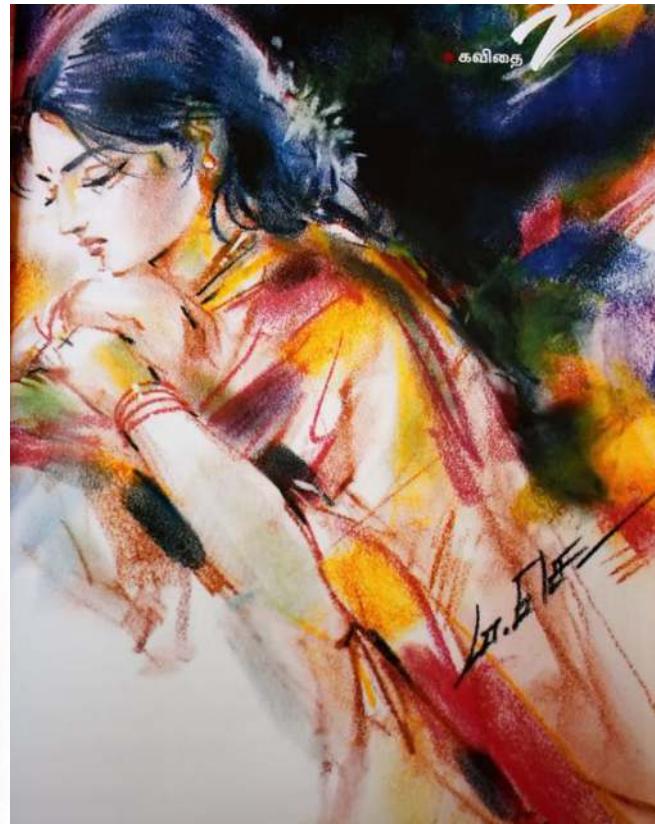
क्योंकि भले ही आप मेरी सास हो पर आप ही मेरी
असली गुरु हो ।

जिस तरह से हर पल तुम मेरी गलतियों को सुधारने की
कोशिश करती रही हो, काश अगर मेरी अपनी माँ ऐसे
सिखाती तो शायद आज ऐसे मुझे जाना नहीं पड़ता ।

अरे अपनी मां है तो क्या हुआ गलती तो गलती ही होती
है ना?! सच में तुम ठीक कहती हो मां, के मेरी मां मुझे
कुछ भी ढंग से सीखा नहीं पाई । किस तरह से सुबह
सुबह सब के जागने से पहले खुद जाग के नहा धोकर,
पूजा पाठ करके चाय बनाकर फिर जगाना होता है
सबको । सच में कभी भी नहीं सिखाया मेरी मां ने, पता
नहीं क्यों?

पर कई बार सुबह सुबह उठाती तो थीं मेरी मां, पर चाय
बनाने के लिए नहीं बल्कि एग्जाम से पहले पढ़ाई करने
के लिए या फिर कभी संगीत अभ्यास के लिए । गाना
हमेशा अच्छा लगता था, कभी सीखा नहीं । पर अच्छा
गाती थी इसलिए बाबा ने मुझे एक हरमोनियम गिफ्ट
किया था । क्यों बाबा? उस दिन मुझे खाना पकाने का
सामान नहीं खरीद के दिया? मां क्यों मुझे नहीं बोला
स्वर अभ्यास के बाद चाय बनाना सिखके जा, क्यों?

पर तुम ने उन लोगों की गलतियों को बहुत अच्छे से
सुधार मां, पल पल में समझा दिया के मैं क्या क्या नहीं
कर पाई । इसीलिए ही तो मैं चाहती हूं के मेरी बेटी भी
वही गलती ना करें, और मैं भी अपने मां की तरह गलती
दुबारा ना दोहराऊं । उसको मैं बचपन से ही सिखाना
चाहती हूं कैसे खुद पहले ना खाके पति, सास, ससुर,



बच्चे को खिलाना होता है ।

मुझे नहीं पता मेरी मां ने मुझे क्यों नहीं सिखाया के कैसे
मछली या मांस के बड़े बड़े टुकड़े सबको बांटने के बाद
अंत में बचा हुआ टुकड़ा खा के भी खुश रहा जा सकता
है । असल में बचपन से सबसे बड़ा टुकड़ा मेरी ही थाली
में आया करता था । क्यों मुझे उस वक्त नहीं बताया कि
जबतक शादी नहीं होती ये सिर्फ तब तक के लिए,
उसके बाद सब कुछ भूल जाना होता है? क्यों नहीं
सिखाया के दिनभर काम काज के बाद लौटता हुआ पति
की किच किच और चीखे सुनने के बाद भी चुप चाप सब
संभालना होता है, सब की गलतियों को खुद के ऊपर
लेना होता है ताकि घर का संतुलन बना रहे । पर तुम
तो बचपन से बस यही सिखाते आई थी कि हमेशा
गलतियों के खिलाफ लड़ना है, कभी भी झूट को बढ़ावा
मत देना । कितना गलत सिखाया मां तुमने मुझे!

बचपन में गली के कुछ प्रोग्राम में डांस में भाग लिया

करती थी। पर उस दिवाली वाली रात का डांस देखकर सबने बहुत तारीफ़ की थी, और खुश होकर बाबा आपने मुझे डांस क्लास में डाल दिया, और कहा था कुछ एक दो चीज़ सीख लेना सही होता है, भविष्य में काम आयेगा।

हम्म, शादी की पहली शर्त थी कि मुझे अब डांस छोड़ना होगा। छोड़ भी दिया था, क्योंकि ये शर्त थी ही उसकी तरफ से जिससे प्यार हुआ था। हांलाकि मेरे कॉलेज फ्रेशर्स पार्टी में डांस देखकर ही उसे मुझसे प्यार हुआ था। खैर।

मां तुम्हे याद है बचपन में मुझे तुम टाइम टेबल बनाने के लिए बोला करती थी, कि कैसे। सुबह से रात तक कब मुझे गाना, कब डांस, कब पढ़ाई, कब टी.वी. देखना या कहानी पढ़ना चाहिए।

कभी भी क्यों नहीं सिखाया कि कैसे टाइम पर सब के लिए खाना पकाना, बर्तन धोना, कपड़े धोना, बच्चों को पढ़ाना, स्कूल छोड़ना, सब्जियाँ खरीदना, राशन लेना, बिजली का बिल जमा करना, बैंक से पैसे निकालना या जमा करवाना कैसे किया जाता है कभी क्यों नहीं सिखाया? अगर भविष्य में यहीं काम करना है तो उसकी ट्रेनिंग क्यों नहीं दी मुझे? क्यों एम. ए. पढ़ाया?



खैर अपने मां ये सब नहीं सिखाया मुझे। पर आपने हर पल में ये सब बखूबी से सिखाया। तभी तो ये विद्वी आप के लिए है। और ऐसे ही सीख मेरी बेटी को भी मिले, इसीलिए ही तो आप के पास मेरी बेटी को छोड़ के जा रही हूँ ताकि भविष्य में मेरी गलत सीख की वजह से उसको भी ना छोड़के जाना पड़े। आप ने जो मुझे सिखाया वो कृपया मेरे बेटी को भी सीखा देना प्लीज़।

अब कुछ गलती मैं आपकी भी बताऊं मां? हालांकि बुजुर्गों का अपमान नहीं किया जाता, मेरे मां बाप की कुछ गलत सीख मैं से ये भी एक थी। हो सके तो मुझे माफ़ कर देना।

पर आप भी तो अपने बेटे को नहीं सीखा पाई थीं कि खाने के बाद हाथ धोते वक्त अपनी जूठी थाली ना भी धोए पर कम से कम बेसिन में तो रख दे, अच्छा वो तो औरतों का काम है। ठीक है। अपने कपड़े ना धोए पर कम से कम यहां वहां तो ना फेंके और दरवाज़े के हुक में टांग दे। या फिर उसमें भी मर्दानगी पे ठेस पहुँचती है?

हां पता है दिन भर वो मेहनत करता है सिर्फ हम लोगों के लिए। पर मैं भी तो दिन भर बैठी नहीं रहती हूँ ना मां। किस तरह से वहीं पैसा खाने में बदल जाए उसके लिए दिन भर मेहनत मैं भी तो करती हूँ। ये तो तुम बेहतर जानती थी मां। हालांकि उसके लिए कोई तनखाह नहीं मिलती पर थोड़ी इज्जत भी नहीं मिल सकती?

मेरी मां, कुछ और ना सही कम इतना तो सिखा ही सकती थी कि जब रिश्तेदार आएं और खाने में नमक कम या ज्यादा हो जाए तो सब के सामने ना चिल्ला के प्यार से या धीमी आवाज़ में भी बोला जा सकता है। ताकि बुरा लगने के साथ साथ अपमानित भी ना लगे।

नहीं मां, आप बेटे को सही से नहीं पाल पाई क्योंकि शायद आप के साथ भी ऐसा ही हुआ होगा। पर आगे और किसी को मेरी तरह ना जाना पड़े इसलिए मैं अपने बेटे को साथ लेकर जा रही हूँ। ताकि उसको मैं सीखा सकूँ किस तरह से कदम से कदम मिला के चलना होता है, चाहे वो औरत हो या मर्द। जीने के लिए जो भी काम करना होता है वो सब अपने जीवन साथी के साथ प्यार से बांट पाए, समाज में चलते आए नियमों के अनुसार नहीं। शादी के नाम पर उसके जीवन साथी की प्रतिभा सिर्फ रसोई तक ही सिमटके ना रह जाए।

शूल की चुभन

सुरेश शर्मा

जब भी सड़क से गुज़रता हूं
अपनी या सरकारी गाड़ी से
नज़र तुम पर जाती है
सड़क किनारे अपनी पोटली को दबाए
बेबस निगाहों से आती जाती गाड़ियों को
सच पूछो अंदर तक भीग जाता हूं
पूरा जिस्म शर्मिंदा हो जाता है
सिर्फ आँखें ही नहीं बल्कि
जिस्म का रोयां रोयां
नम हो जाता है,
हम और तुम अपनी अपनी
बेबसी को छुपाए, आँखें हटा लेते हैं
लेकिन मैं जानता हूं
मैंने तुम्हारी आँखे पढ़ ली हैं
तुमने भी हमारी आँखों के भावों को
जान लिया है
हम एक दूसरे की मजबूरी
समझ जाते हैं और तुम हमसे
और हम तुमसे नज़रे बचा कर
निकल जाते हैं
लेकिन क्या निकलना
इतना आसान है?
नहीं मैं जानता हूं
तुम्हारी निगाह
मेरा पीछा करती रहती है

मैं अपने अंदर एक शूल की
चुभन महसूस करता हूं
जो भीतर तक मुझको
भेद देती है, दोस्त माफ करना
मैं तुम्हारी वेदना जानता हूं
जो सबको नज़र आ रही है
लेकिन मेरी बेबसी या मेरी भी तो
कुछ मजबूरियां होंगी?
जो शायद दिखती नहीं
लेकिन होती हैं
इस लिए हम तुम्हारे बहुत
करीब हों
छूकर नहीं महसूस करो
आँखों को पढ़ो
हम एक सिक्के के
दो पहलू हैं
माफ करना दोस्त
समय बदलेगा
हम फिर गले मिलेंगे
हाथ मिलाएंगे
और साथ बैठ
पुरानी यादें ताज़ा करेंगे।
यदि, यदि, यदि हम फिर
मिल पाए तो.....
सुरेश

सांवले सलोने श्याम

उपासना शर्मा



बोलूंगी मैं ना हीं

अब के बरस आए
कान्हा न तुम जो
बोलूंगी मैं ना हीं
अपनी कसम से

पीपल की छयां भी चुमने लगेंगी
मथुरा की नदियां भी रुकने लगेंगी
आना तो होगा इनकी कसम से
बोलूंगी मैं नाहीं
अपनी कसम से

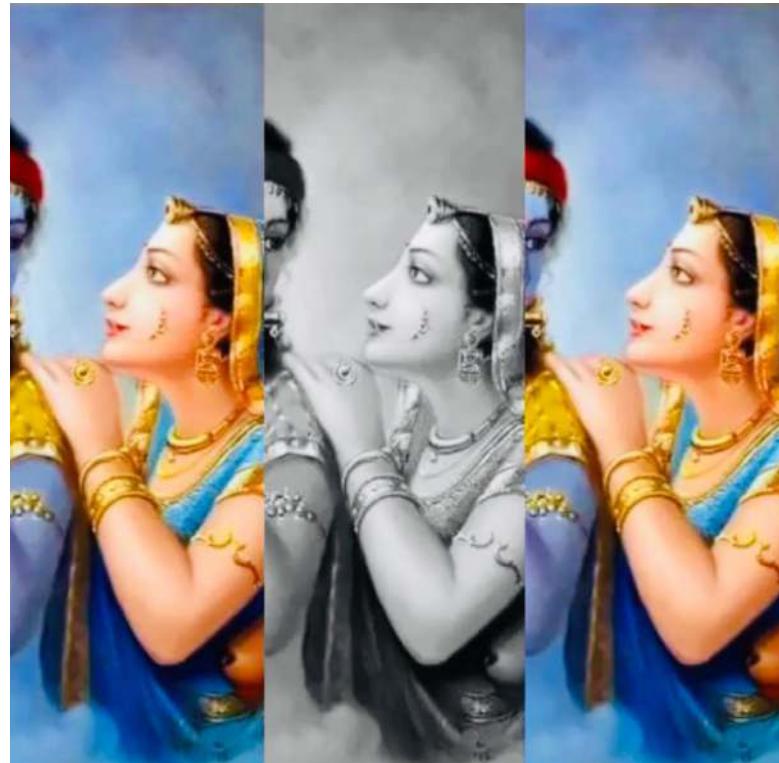
सखियां तुम्हारी, तुम्हें पूछती हैं
अखियां हमारी, तुम्हें ढूँढती हैं
आओगे कब, ये बताओ कसम से
बोलूंगी मैं नाहीं
अपनी कसम से

श्याम सखी राधा

हो गई है राधा प्यारी श्याम सखी
कुछ नहीं है माता बनके श्याम सखी
रुकमीं ने भार्या बनकर
पूजा है उनको ऐसे
मन्दिर में मूरत बनकर
राधा ये सोचे कैसे उनको रिझाए
आखें चुरा के कैसे उनको बुलाए
माथे का टीका और धानी चुनरिया
कांच की चूड़ी और बजती पायलिया
सोलह सिंगार कर ड्योढ़ी तके
कोई जाके उनसे खबर ये कहे
बीते पहर तीनों



अब तो बिरहन की सुध लो
दर्शन करा दो
फिर चाहे जो कुछ हो
उसकी प्रतीक्षा का
कुछ तो तुम मोल दो
प्रेम छन्द न गहो
कुछ मौन से ही बोल दो
हो जाएगी तृप्त राधा
तिनका भर प्यार से
जीत लोगो तुम उसे
बस नैनों के वार से



आई सजीली धूप सखी

भोर भई सज के आंगन में
आई सजीली धूप सखी
चौक पुराओ मंगल गाओ
और करो उल्लास सखी
भोर भई सज के आंगन में
आई सजीली धूप सखी

रंग रंगीली और चमकीली
कुछ थी रसमरी कुछ थी कटीली
उसके नैना कुछ कजरारे
कुछ भोले और कुछ मतवारे
मन भाए वो रूप सखी

बहकी चाल और बहके कदम हैं
वो हैं हमारे और उनके हम हैं
मन हर्षाए वो रूप सखी
भोर भई सज के आंगन में

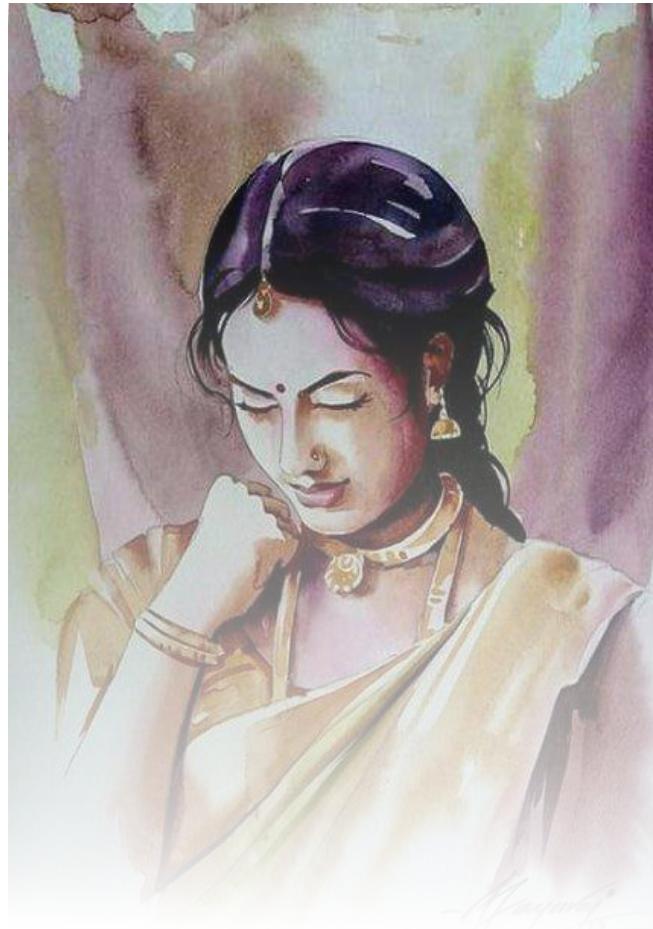
श्याम की दीवानी राधा

श्याम की दीवानी राधा
बन तो गई है
जाने कैसे उसको
ये पीर लगी है
जमुना किनारे घंटों हैं बीते
सखियाँ चिढ़ाएं पर हम तो हैं रीते
जाने किससे से अपनी
तकदीर लगी है
श्याम की दीवानी राधा
बन तो गई है
बाबुल का अंगना और
मैया का पलना
कैसे भुलाए राधा
सखियों से मिलना
जाने किसके लिए वो
प्रेम जंजीर से बँधी है
श्याम की दीवानी राधा
बन तो गई है

मैं समझ गई!

मनोज कुमार

चेहरा!
नहीं! मेरा साँवला चेहरा!
मैंने बहुत ही प्यार से,
अपने साँवले चेहरे को सजाया,
पत्रों से,
फूलों से,
परागों से,
रंग चुराकर
खूबसूरत दिखने के लिए
अपना चेहरा,
नहीं! अपना साँवला चेहरा!
अच्छा दिखने के लिए
खूबसूरत, आकर्षक
लुभाने के लिए
परागों से चेहरे पर बेस बनाया
पत्तियों से काजल,
फूलों से गालों को, होठों को,
नाक व पलकों को सजाया
मन की आँखों में देखकर
सचमुच! काफी सुन्दर दिख रहा था!
मेरा चेहरा!
नहीं! मेरा खूबसूरत चेहरा,
मन प्रफुल्लित था,
मन किया बाहरी आईना देख लूँ
तालाब के किनारे,
पानी की सतह पर,



अपने चेहरे को देखा,
नहीं! अपने खूबसूरत चेहरे को देखा!
मैं डर गई!
तभी ठहरे पानी की सतह पर
तालाब की मछली तैर गई।
मेरा खूबसूरत चेहरा धूल गया।
मेरा चेहरा!
नहीं मेरा साँवला चेहरा!
सचमुच! बहुत खूबसूरत है।
मैं समझ गई!

शिक्षा ! तुम क्या हो ?

विजय कुमार सिंह



शिक्षा ! तुम क्या हो?
तुम सीखना हो या सिखाना
तुम शिक्षक हो या विद्यार्थी
तुम परीक्षा हो या मूल्यांकन
तुम व्याख्यान हो या संवाद
तुम संकुचित हो या विस्तार
तुम क्या हो?
तुम कक्षा तक ही सीमित हो,
या पड़ोस परिवार समुदाय में भी
तुम किताबी कीड़ा हो या कला— संस्कृति की सहभागी
तुम अंतर्निहित शक्तियों की बैसाखी हो,
या मनुष्यता की आशा
तुम क्या हो ?
तुम खिदमत हो या खैरात
तुम बुद्धिमान हो या जानने की इच्छा
तुम्हीं बताओ
शिक्षा ! तुम क्या हो ?

पानी

अर्पिता

पारदर्शिता स्वरूप स्तंभ है
अपनी राहें जाने स्वयं
चाहो दे दो आकार कोई भी
पा ले वैसा ही रूप स्वयं

कोई इसको रोक सके ना
न कोई कर पाए इसका लोप
गर हमने कोशिश भी की तो
संग मिल प्रकृति बन जाए विकोप

अपने गुण से शांत रहे जब
करे उन्नति विकास समग्र
नहीं तो मानव संकुल नाश
शोर मचे जब होवे व्यग्र

इसकी बचत ही मूल मंत्र है
कीमत जल्दी पहचानो सब
नहीं तो पीढ़ी क्या पाएंगी
खोकर इसको फिर पछताएंगी



अनभिज्ञ यादें

कविता मिश्रा

देहरी पर लदा दोपहर
हवा से धूप का फुसफुसाना
छुपा न सकी !

एक कोने में बर्तनों का ज़ोर ज़ोर से बातें करना, और
अन्तरम में तेलों का छनछनाना
मैं जान न सकी !

अतीत की याद में घुली सुगंध
का गुदगुदाना चाह कर भी
रोक न सकी !

अनायास पत्तों का डौलना
एक पतली सुरीली आवाज़ का फँस जाना
मन का विस्मृत होना
रोक न सकी!

चापाकल के किलौल
अनभिज्ञ यादों का भरभरा कर गिरना और उन शब्दों
का
विस्मृत होना
रोक न सकी!

दूब के घास का
ओस की बूँदों में नहाना
वही पुरानी पगड़ंडी को फिर से
खोजना, रोक न सकी !

हिन्दी मेरी अभिलाषा

निधि शर्मा

मेरी मधुर बोली हो तुम, मेरी प्यारी भाषा हो तुम

मेरे मन की हर इच्छा और अभिलाषा हो तुम

एक भरोसा अनुपम हो तुम

गंगा जमुना की ठंडी धारा हो तुम

तो स्वादिष्ट व्यंजनों से सजी थाली हो तुम

यूँ तो हैं सभी भाषाएँ उत्तम

पर मेरे चेहरे की लाली हो तुम

माँ आदि के माथे पर लगी चंद्रबिंदु

विद्यालयों में अंग्रेज़ी और विभिन्न भाषाओं की बहन प्यारी हो तुम

हो बहुत ही सरल सरज, बच्चों की गतिविधियों की जान हो तुम

करे चाहे नुक्कड़, नाटक या कविता, एकता की अनुपम मिसाल हो तुम

राजभाषा, संपर्क भाषा, हिन्दुस्तान की मातृभाषा हो तुम

तुम्हारे बिना हिन्द न चले, ऐसी जीवन रेखा हो तुम

हमारे जीवन की परिभाषा हमारी हिन्दी प्यारी हो तुम

हिन्दी पर हिन्दुस्तानी की वर्तनी

हिन्दी हमारी संस्कृति हमारा सुंदर आचरण हो तुम

समाप्त न हो कभी उज्ज्वल अस्तित्व तुम्हारा

भारत की अनमोल निधि, भारत का सुंदर ताज हो तुम

चलन चले कितनी ही भाषाओं का हो, पूरे विश्व में चमके ऐसा सुनहरा तारा हो तुम

आज भी हो कल भी रहेगी, हर भारतवासी के दिल का वो कोमल भाव हो तुम !!

अनुभूति

नितिन

हे परिवर्तन आने से तुम्हारे,

दर्द तो मिले,

लेकिन

प्रकृति आनंदित हो उठी

प्रदूषण से ग्रसित

नदी, सागर, पर्वत, पेड़, पौधे, जीव-जन्तु, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

पूरे सौरमंडल का वातावरण

अपनी शुद्धता वापस पाकर

खुशी से झूम उठा।

एक आहत मनुष्य की आह

समझ लें,

हे परिवर्तन

तुने मनुष्य को

कभी न भरने वाले

बहुत घाव और दर्द दिये हैं।

सपने को बस एक सपना ही समझो

जो आया तो था, बस एक सपना बन कर ही चला जायेगा।



माझी

लोकेश कुमार



माझी हूँ मैं पर पतवार चलाना ना आया मुझे
दूब रही थी कश्ती मेरी

पर बचाना न आया मुझे

सोच रहा हूँ मैंने कैसे समन्दर में उतारी है कश्ती अपनी
कि पार लगाना ना आया मुझे
माझी हूँ..

बहुत सी लहरें उठी इस समन्दर में
जिससे बचाने की बहुत कोशिश की अपनी कश्ती को
पर उसे भी बचाना ना आया मुझे
माझी हूँ..

ढूँढती हैं मेरी निगाहें किसी सहारे को
पर इस समन्दर में दूर-दूर तक कोई भी
सहारा नज़र न आया मुझे
माझी हूँ..

समय की क्या मार है कि साथ छोड़ा है अपनों ने ही
पर रस समय को भी बदलना ना आया मुझे
माझी हूँ..

शिकवा दूसरों से क्या करें हम
जब अपना ही खुदा रुठा है हमसे
दूसरों पर तोहमत क्या लगाए
वो भी तो लगाना ना आया हमें
माझी हूँ..



चित्र अभिव्यक्ति प्रतियोगिता

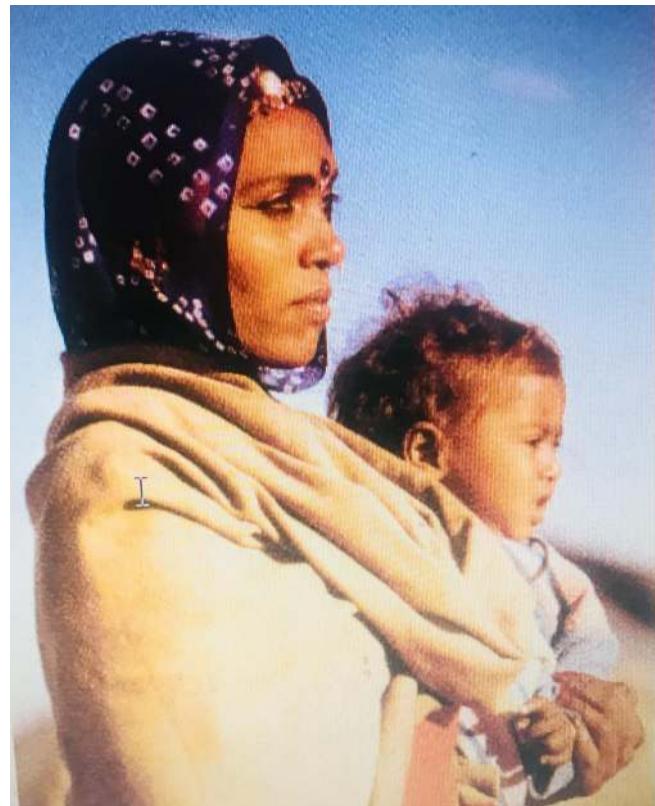
विद्यालय के राजभाषा विभाग द्वारा कोविड-19 के प्रकोप के कारण हुए लॉकडाउन के दौरान ऑनलाइन माध्यम से चित्र अभिव्यक्ति प्रतियोगिता आयोजित की गई। इस अवधि के दौरान प्रतिभागियों से द्वारा लिखी गयी कृतियों को पत्रिका में संकलित किया गया है।

- अम्मा का आँचल -

सुमन वैद्य

अम्मा,
ये आँचल तेरा
हमेशा रहा
घर मेरा।
है तो पतला
झीना सा,
पर लौह सा ये आँचल तेरा।
उर से बचाता
रक्षक है ये मेरा
बलशाली आँचल तेरा।
कोई न मुझे ढूँढ पाता,
जब इसमें मैं छिप जाता
जब थकता
आता तेरे पास
तू ये आँचल
ओढ़ा देती
झट से मुझे सुला देती
तेरे आँचल की रजाई में
सपने देखना सीखा मैंने।

अम्मा,
तेरा आँचल
दुनियाँ है,
जादू है मेरा
गर्मी में ये होता ठंडा



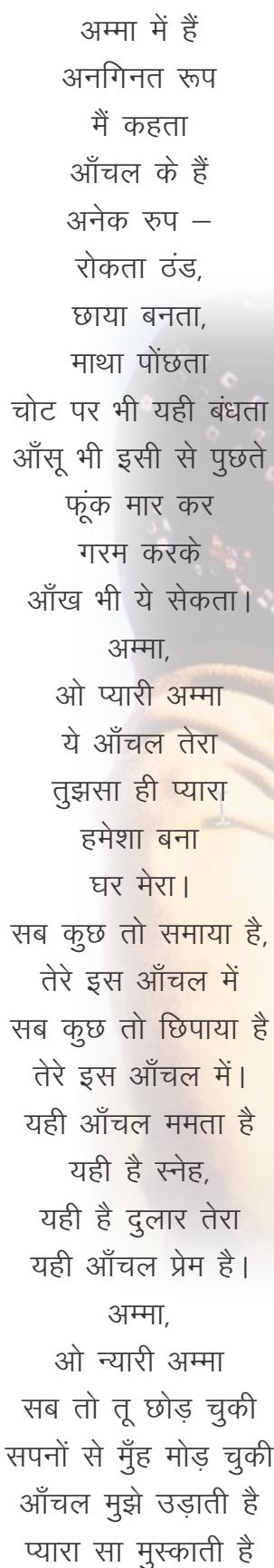
सर्दी में हो जाता गरम।

अपने इस आँचल को
मेरी ढाल बनाती है
रोता— रोता आता हूँ
समझ तू जाती है

जल्दी आँचल की ओट में,
भूख मेरी मिटाती है।

अम्मा,

बड़े काम का तेरा आँचल
कीमत में अनमोल
कहने को ये कपड़ा भर है
पर प्राणवान है तेरा आँचल।
सब कहते



अम्मा में हैं
अनगिनत रूप
मैं कहता
आँचल के हैं
अनेक रूप –
रोकता ठंड,
छाया बनता,
माथा पोंछता
चोट पर भी यही बंधता
आँसू भी इसी से पुछते
फूंक मार कर
गरम करके
आँख भी ये सेकता।

अम्मा,
ओ प्यारी अम्मा
ये आँचल तेरा
तुझसा ही प्यारा
हमेशा बना
घर मेरा।

सब कुछ तो समाया है,
तेरे इस आँचल में
सब कुछ तो छिपाया है
तेरे इस आँचल में।
यही आँचल ममता है
यही है स्नेह,
यही है दुलार तेरा
यही आँचल प्रेम है।

अम्मा,
ओ न्यारी अम्मा
सब तो तू छोड़ चुकी
सपनों से मुँह मोड़ चुकी
आँचल मुझे उड़ाती है
प्यारा सा मुर्सकाती है

मुझे देखकर
सब कुछ तू भूल जाती है।
पर
जब मैं बचपन जीकर
आऊंगा बाहर
तेरे इस आँचल से,
क्या तब
रख सकूँगा
नाता इससे
रख सकूँगा
लाज
मैं तेरे इस आँचल की
या मात्र रह जायेगी
महक
जीवनभर साथ मेरे
इस आँचल की।
छुपाता चलूँगा
तुझसे
अपने काम,
वो काम
जिनसे
तू कभी
बचाती थी
आँचल की ओट देकर,
क्या नहीं करना
सिखाती थी।
अम्मा,
ये आँचल तेरा
हमेशा था घर मेरा
पर बड़े होने पर...?
न अम्मा,
मुझे बड़ा नहीं होना।

माँ

ज्योत्सना

हाँ मैं माँ हूँ।

पर भूलना मत, मैं इंसानी माँ हूँ।
है शक्ति मेरे अंदर भी
सहने की, ना कहने की,
लड़ने की, हर बात पे
आगे बढ़ने की।

पर मैं देवी माँ नहीं हूँ।
दो भुजाओं वाली हूँ।

सारा दिन जब माँ, माँ, मम्मी
सुनती हूँ
तो थक कर मैं भी
माँ को ही पुकारती हूँ।
ओ मेरी देवी माँ, बुरा मत मानना,
मुझे भी अपने जैसी बना दो।
दो भुजाएँ कम काम कर पाती हैं।

फिर कहती हूँ बुरा मत मानना,
मुझे भी अपने जैसी बना दो।
दो भुजाएँ कम काम कर पाती हैं।
मुझे भी दस भुजाओं से सजा दो।
फिर मैं भी मल्टीटास्कर बन जाउंगी।
दस घंटों का काम एक घंटे में निबटाउंगी।

काश मैं भी आशीर्वाद दे पाती,
तो घर वालों में खुद काम करने की
भावना जगाकर
चमत्कार कहलाती।

पकवानों से मेरी रसोई रोज़ महकती है,
हिस्से मेरे कम ही आता,
हर रोज़ आत्मा सहती है।
माँ मुझे भी तुम, शुभकर्णी कर दो।
कोई मुझे भी भोग लगाए,
और सुबह सुबह जब जागूँ मैं तो,
जय मम्मी मेरी, भैया

जय बीवी मेरी
जय बहू मेरी,
तुमको निशिदिन ध्यावत
ओह घर की देवी, कहकर
पकवानों का भोग लगाएं द्य

पर हाए, काश मेरा यह सपना
पूरा हो जाता,
मुझपर भी यह संसार
फूल चढ़ाता।

न दो एक औरत को
भले ही, चित्र बना बनाकर,
उस पावन देवी का नाम,
पर मत होने दो,
उस जननी को बदनाम
वह सच में खुद को भूल कर
अपनों के सपने सजाती है।
वो माँ ही है, हाँ हाँ, माँ ही है,
जो निस्वार्थ, पग पग पर,
तेरी खुशियों में ही अपना
जीवन सजाती है।

अकेली नारी

सिकंदर कुमार

भविष्य को गोद में लेकर ,
खड़ी है ।
उम्मीदों की किरणों को
हौसलों की चादर में लपेटे ,
तेज पुंज किंचित मन में ,
दृढ़ विश्वास लिए ।
मनमोहक नैनों से ,
काल के भीतर झांक रही है । समय ठहरा है ।
मन नहीं ।
काल तू जोर लगा
तेरी भयकारी में
अकेली है नारी ।
शंकित मन पथ पर
प्राण वायु बह नहीं सकती
अपना कोई भले दूर हो,
मिलन की बेला ढह नहीं सकती ।
इसी दृढ़ संकल्प से
बाट जोह रही है ।
नीले आसमान के नीचे ,
दुख की स्याही से ,
उज्जवल भविष्य का
नव निर्माण कर रही
ये नारी ।

सपनों की गोद

'ऋषिकेश कुमार'

तुम अपने सपनों को गोद में लेकर,
अनंत यात्रा पर निकलना चाहती हो ।

तुम समुद्र की लहर को पारकर,
बस एक कदम जाना चाहती हो ।
माँ तुम थकती नहीं,
सोती नहीं,

तुम अपने दर्द को,
एक चादर से ढकने की कोशिश कर रही हो ।
तुम अपने भूख को जाहिर नहीं कर सकती ।

क्यों माँ ?

तुम जो नहीं कहती हो,
तुम्हारी आँखें कह जाती हैं ।
मुझे पता है तुम गोद में लिए

अपने सपनों की आँखों में नहीं देख रही हो,
कहीं आँखों से समुद्र की लहर ना निकल पड़े,
मुझे पता है माँ तुम मेरे लिए पलक झापक नहीं
सकती ।

धीरा वर्मा-एक बहुमुखी व्यक्तित्व

— भावना सक्सैना

बल्नारिया में हिंदी शिक्षण के प्रभाव और इतिहास पर फ़िल्म चल रही है। यूट्यूब पर अपलोड की गई इस फ़िल्म को हजारों लोगों ने देखा है। फ़िल्म के अंत में सुमधुर सधे हुए स्वर में बैंगनी और बादामी रंग की साड़ी में एक सौम्य भारतीय महिला बल्नोरियन गीत गा रही हैं। वह बल्नोरियन में ऐसे गा रही हैं जैसे पानी में मीन रहती है। स्व भाषा की ही सहजता से बल्नोरियन में गाने वाली यह छवि है श्रीमती धीरा वर्मा की।

प्रोफेसर धीरा वर्मा, बेहद सौम्य मधुर व्यक्तित्व की स्वामिनी, जिन्होंने लगभग 25 वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय में बल्नोरियन भाषा का अध्यापन किया। मुझे उनसे पहली मुलाकात का अवसर 1997 के शायद नवंबर या दिसंबर में मिला था। दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर अनुवाद पाठ्यक्रम की छात्रा थी तब मैं और परियोजना कार्य के लिए डॉक्टर विमलेश कांति वर्मा जी को मेरा मार्गदर्शक (गाइड) नियत किया गया था। परियोजना कार्य लगभग समाप्ति पर था। उसे अंतिम



मूर्त रूप देने के लिए कुछ मार्गदर्शन की आवश्यकता थी और डॉक्टर वर्मा जी की कक्षाओं और मेरी अपनी व्यस्तताओं में समय निकालकर अंततः एक रविवार को सर के आवास पर परियोजना संबंधी मार्गदर्शन के लिए मैं और मेरी एक और मित्र पहुंचे थे। वहीं हुई थी, धीरा मैम से मेरी पहली मुलाकात। पहली ही मुलाकात में धीरा





जी का वात्सल्य और स्नेह अभिभूत कर गया। कार्य समाप्त करके जब हम चलने को हुए तो धीरा मैम ने बहुत आग्रह से दोपहर के भोजन के लिए रोक लिया। आँखें बंद करती हूं तो लगता है वह कल ही की बात है, और आँखें खोलती हूं तो उनसे सहज बरसात झरने लगती है, यह सोच कर कि अब पुनः उस ममतामयी मूरत के दर्शन ना हो सकेंगे...

जीवन की राहों में जिन लोगों ने बहुत अधिक प्रभावित किया उनमें से एक थीं धीरा वर्मा जी। 1997 की उस पहली भैंट के पश्चात तुरंत कोई अवसर न हुआ उनसे मिलने का लेकिन उनका स्नेह मन में बसा रहा। फिर 2001 में संस्कृति मंत्रालय की पत्रिका संस्कृति में उनका लिखा आलेख हमारे सांस्कृतिक प्रतीक – स्वास्तिक और मंगल कलश, पढ़ने का सुअवसर हुआ। संस्कृति के प्रति उनकी गहरी समझ प्रभावित कर गई। ममतामयी मूरत में एक और आयाम जुड़ा और मन में वह एक प्रभावशाली लेखिका के रूप में स्थापित हो गई। बाद के वर्षों में उनके अनेक रूप देखे, हर एक में बहुत

गरिमामयी व विलक्षण दिखाई दीं।

कुछ ही समय पश्चात साहित्य अकादमी में अखिल भारतीय लेखिका संघ का कार्यक्रम था वहाँ उनसे पुनः भैंट हुई किंतु लेखिका संघ की उपाध्यक्ष के रूप में। सक्रियता से अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए। छात्रों के लिए शिक्षकों को पहचानना सहज सरल होता है किंतु शिक्षक, वह भी शिक्षक की पत्नी, जिनसे आप एक ही बार मिले हों, तुरंत आपको पहचान ले यह अभिभूत कर जाता है। अत्यंत व्यस्त होते हुए भी उस दिन उनकी आत्मीयता सराबोर कर गई। धीरे-धीरे जैसे-जैसे उन्हें जाना समझा तो यह पाया कि यह स्नेह वात्सल्य आत्मीयता उनका सहज स्वभाव था और हर कोई उनके इस स्वभाव का कायल था। इतने मनोहारी स्वरूप के भीतर एक गहन गंभीर अकादमिक मनोवृत्ति आपकी विशेषता थी।

आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान विषय में एम.ए. किया था और दो दशकों से भी अधिक समय तक दिल्ली विश्वविद्यालय के स्लावोनिक और फिनों उग्रियन भाषा विभाग में बल्लारियन भाषा और साहित्य का अध्यापन करती रही। आप एक प्रतिष्ठित अनुवादिका थीं, जिन्होंने बल्लारियन भाषा की कालजयी कृतियों का मूल भाषा से हिंदी में अनुवाद किया। इनमें विशेष हैं, सेपतेम्बरी, बल्लारिया की लोककथाएँ, बेला विदाई की और आँखूचोर। आपने न सिर्फ इन कृतियों का अनुवाद किया अपितु बल्लारिया के इतिहास का भी मूल बल्लोरियन भाषा से अनुवाद किया। आप आजीवन बल्लोरिया और भारत के बीच एक सेतु बनी रहीं। यही कारण है कि आपके जाने पर भारत में बल्लोरिया के राजदूत ने विशेष सांत्वना संदेश प्रेषित किया।



आप 25 वर्ष से अधिक अखिल भारतीय लेखिका संघ, नई दिल्ली की उपाध्यक्ष रहीं और अपने दायित्वों का बखूबी निर्वहन करते हुए लेखिका संघ के सदस्यों को तकनीक से जोड़ने का भरपूर प्रयास किया, जिसके लिए आप तकनीकी विषयों पर कार्यशालाएं भी आयोजित कराती रहीं। देश विदेश में आपने अनेकों बार सफलतापूर्वक असंख्य कार्यक्रमों का आयोजन कराया। अन्य लेखिकाओं के लिए आप सतत प्रेरणा का स्रोत थीं।

इन सबके साथ ही आप तीन दशकों से भी अधिक समय से प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन अनुसंधान में संलग्न रहीं। आप 'फीजी में हिन्दी: स्वरूप और विकास' की सहलेखिका तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'प्रवासी भारतीय हिन्दी साहित्य' की सह—सम्पादक भी थीं। गिरमिट गीतों के अध्ययन अनुसंधान में आपकी विशेष रुचि रही। प्रवासी भारतीयों से सम्बन्धित गिरमिट गीतों के संग्रह के संदर्भ में उन्होंने फीजी, मारीशस तथा दक्षिण अफ्रीका आदि देशों की यात्राएँ कीं और इन देशों के गिरमिट गीतों का संग्रह किया और उनसे सम्बन्धित अनेक अनुसंधान पूर्ण आलेख शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किये और आकाशवाणी के विविध चैनलों से उनका प्रसारण भी हुआ।

भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों पर आपकी सवा सौ से अधिक सोदाहरण संगीत वार्ताएँ आकाशवाणी के विविध चैनलों पर प्रसारित हुईं। आपने ब्रज लोकगीतों के संकलन संयोजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपके मधुर कंठ में गाए गीतों से श्रोतागण झूम उठते थे। हिंदी, अवधी, ब्रज, बल्योरियन, फीजी बात में आपका गायन बेहद प्रभावशाली व मधुर था। आप सामाजिक कार्यों में भी बेहद सक्रिय भूमिका निभाती रहीं। वैशाली में आयोजित किसी सामाजिक—सांस्कृतिक कार्यक्रम में आपकी विशेष भूमिका रहती थी।

आपके व्यक्तित्व का एक और उल्लेखनीय पक्ष बाल साहित्य सें आपकी रुचि रहा। आपने बच्चों के लिए 14 लोककथाओं का लेखन व संपादन किया और उनका अनुवाद अंग्रेजी में भी किया। सस्ता साहित्य मंडल से प्रकाशित यह पुस्तकें हिंदी अथवा अंग्रेजी सीखने वालों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

आपने डॉक्टर विमलेश कांति वर्मा के साथ कंधे से कंधा



मिलाकर सभी परियोजनाओं में उनका साथ दिया। विशेष रूप से उल्लेखनीय है दृष्टिबाधित छात्रों के लिए डॉ. स्नेह लता श्रीवास्तव स्मृति योग्यता सह साधन छात्रवृत्ति की स्थापना, जो हर वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा को दी जाती है।

धीरा वर्मा जी की वेबसाइट पर उनका परिचय कलाकार लेखक और माँ के रूप में दिया है। यह सभी भूमिकाएं उन्होंने बहुत धैर्य व समर्पण के साथ आजीवन निभाई।

आपका जाना कला व साहित्य जगत की एक अपूर्णीय क्षति है। मेरी निजी क्षति है, कि 22 वर्षों में जो अटूट नाता आपसे जुड़ा उस वेक्यूम को कोई नहीं भर पाएगा। किंतु आपके स्नेह की अमूल्य धरोहर सदैव मेरी और मुझ जैसे असंख्य छात्र—छात्राओं का प्रेरणास्रोत रहेगी।

भारतीय संस्कृति : एक अप्रतिम धरोहर

चेतना वशिष्ठ

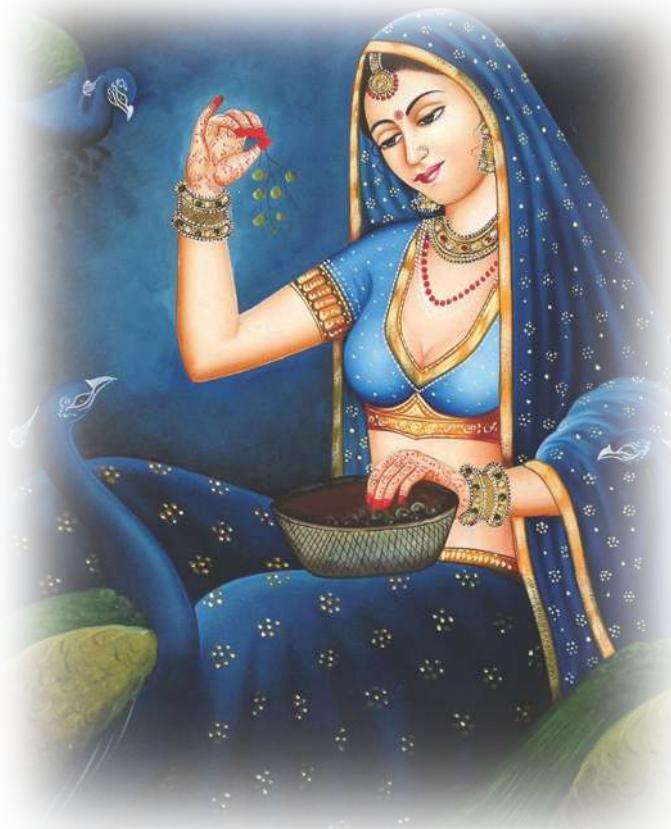
सर्वविदित है भारत की संस्कृति प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक और बहुआयामी संस्कृति है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि पूरे विश्व में भारत अपनी संस्कृति और परम्परा के लिए प्रसिद्ध है। किसी भी देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। देश के नागरिकों का खान—पान, रहन—सहन उनकी वेशभूषा, उनकी भाषा, उनके रीति—रिवाज, धर्म दर्शन कला इत्यादि में ही देश की संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है।

हमारा देश कृषि प्रधान देश है और कृषि हमारी लोक संस्कृति से जुड़ी हुई है। चाहे कृषि के रोपाई का समय हो या फसल उगाने का, तीज हो या सावन, विवाह के रीति—रिवाज हों या बाल संस्कार हर अवसर हमारी संस्कृति की सौंधी—सौंधी खुशबू लिए रहता है। हमारे देश की मिट्टी के कण—कण में हमारी संस्कृति की महक है, खुशबू है, सुगंध है।

यह तो सर्वविदित है कि भारत में कई धर्म जैसे हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म के अनुयायी मिल—जुलकर रहते हैं। इन विभिन्न धर्मों के लोगों की अपनी भाषा, खान—पान, रीति—रिवाज अपनी—अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं। धर्मों से जनित परंपराओं का मिश्रण अलग—अलग है फिर भी सभी धर्म आपस में एकता बनाए हुए हैं। भारतीय संस्कृति विविधताओं का अद्वितीय उदाहरण है। विभिन्न संस्कृतियों और परम्पराओं को निभाते हुए भी यह सामाजिक रूप से स्वतंत्र हैं। यही कारण है कि धर्मों की विविधता में एकता के मजबूत संबंधों का यहाँ अस्तित्व है। सभी धर्मों के अनुयायियों के अपने त्यौहार हैं, मेले हैं और उनको मनाने के लिए सभी सामाजिक रूप से स्वतंत्र हैं। हम अपने त्यौहारों को अपनी रस्मों के तरीके से मनाते हैं। भगवान की पूजा और प्रार्थना करते हैं।

रस्मों के गीत गाते हैं। नृत्य करते हैं। ऐसे ही गौतम बुद्ध का जन्मदिवस, बुद्ध पूर्णिमा, महावीर जयंती, गुरु नानक जयंती (गुरु पर्व) आदि कई धर्मों के लोगों द्वारा एक साथ मनाए जाते हैं।

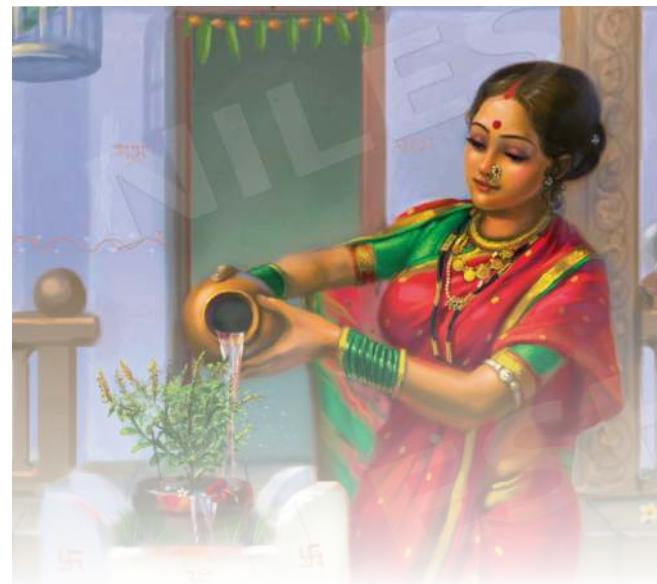
भारतीय संस्कृति अपनी विशाल भौगोलिक स्थिति के समान अलग—अलग है। हिमालय की वर्फ से लेकर दक्षिण के पठारों तक पश्चिम के रेगिस्तान से लेकर पूर्व की पहाड़ियों की तराई तक, भूगोल की भव्यता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस कारण भारतीय परिधान, भोजन और जीवन—शैली उसके उद्भव के अनुसार अलग—अलग होते हैं। भारत के सभी राज्य और क्षेत्रों के अलग—अलग रहन—सहन, खान—पान और भाषाओं के कारण भारतीय संस्कृति भू—भाग पर सबसे बड़ी और



अलग संस्कृति है।

लीजिए हम सबसे पहले भारतीय व्यंजनों की, यहाँ के खान-पान की बात करते हैं इसमें कोई दो राय नहीं है कि हम भारतीय संस्कृति की बात करें और यहाँ के विश्व भर में प्रसिद्ध व्यंजनों की बात न करें तो स्वाद फीका सा रह जाता है। भारतीय व्यंजनों में मसालों का तेज प्रयोग, इनके बनाने की विधि अन्य देशों बहुत हटकर है इसीलिए भारतीय व्यंजन विश्व भर के देशों में अलग स्वाद के साथ परोसे हुए लगते हैं। भारतीय पकवान भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हमारे हर तीज त्यौहारों के अलग-अलग पकवान अपनी अलग ही खुशबूलिए हुए हैं। एक और होली पर जहाँ गुंजिया का स्वाद होली के रंगों को दर्शाता हैं वहीं दूसरी ओर दिपावली के तरह-तरह भारतीय मिष्ठान मुँह में रसीलापन भर देते हैं। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक हर क्षेत्र के व्यंजनों की अपनी विशेषता है। चाहे वह उत्तर भारत के चटकीले स्वाद के व्यंजन हों या दक्षिण भारत के नारियल का स्वाद लिए व्यंजन। गुजरात का श्रीखंड हो या बिहार का लिट्टी चोखा। हर व्यंजन एक-दूसरे से पूर्णतः रंग-रूप, स्वाद में भिन्न हैं और भारतीय चटकीली और रसीली संस्कृति का अपना स्वाद लिए हुए हैं।

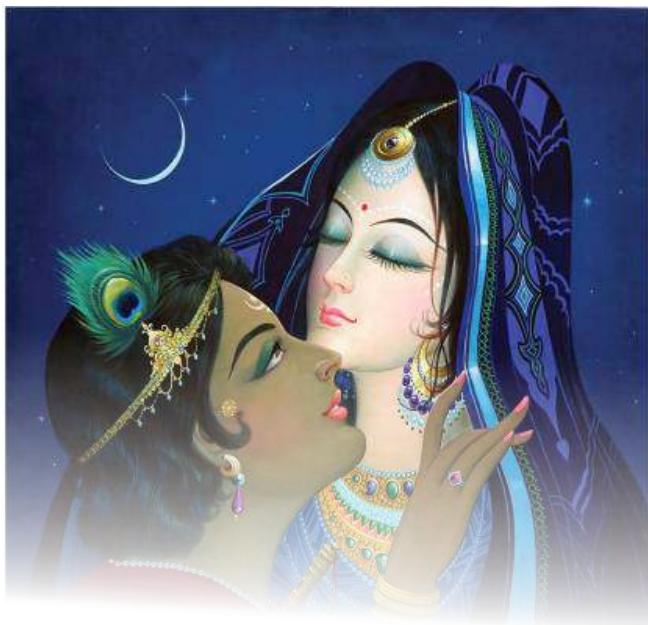
जहाँ तक भारतीय परिधानों की बात है, भारतीय संस्कृति हर क्षेत्र के परिधानों का अलग-अलग रंग ओढ़े हुए है। जैसा कि मैंने पहले भी उल्लेख किया है कि भारत की भूगौलिक स्थिति के कारण भारतीय परिधान, भोजन अलग-अलग होते हैं। पर भारत का मुख्य पारम्परिक परिधान पुरुषों के लिए धोती-कुर्ता और स्त्रियों के लिए साड़ी विश्वभर में प्रचलित हैं। हालाँकि समय के साथ और आरामदायक परिधानों को ध्यान में रखकर भारतीय वेशभूषा में बहुत परिवर्तन हुआ है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर पुरुष और महिलाओं को आप पारम्परिक परिधानों में ही पाएंगे।



भारतीय व्यंजनों और परिधानों की हल्की सी झलक दर्शाते हुए मैं भारतीय संस्कृति के कोस-कोस पर बदली भारतीय भाषाओं और बोलियों की संक्षिप्त जानकारी को समेटते हुए आगे बढ़ूँगी।

भारत में कई सारी भाषाएं बोली जाती हैं यहाँ पर लगभग सभी राज्यों में अपनी अलग भाषा है, अपनी अलग बोली है। निःसंदेह संस्कृत से निकली हर भाषा महत्वपूर्ण है। हमारा देश भाषावर प्रांत की रचना पर आधारित है। इसीलिए भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है जिनमें असमी, बांग्ला, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोकणी, मैथली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिन्धी, तमिल, तेलगु और उर्दू शामिल हैं। इन भाषाओं के अतिरिक्त भारत की अपनी बोलियां हैं अनेकों उप बोलियां हैं। कहना न होगा भारतीय संस्कृति ने इन मोतीरूपी भाषाओं को ऐसे सुनियोजित ढंग से अपने अन्दर पिरोया हुआ है कि इतनी बहु-भाषाएं, बोलियां, उप बोलियां होने के बावजूद विविधता में एकता का रंग लिए हुए इसने संपूर्ण विश्वभर में अपनी अलग ही पहचान हुई है।

भारत ऋषि मुनियों का देश रहा है। ऋषि मुनि तपस्या



के साथ—साथ वनों में रहकर जड़ी—बूटियों की भी खोज किया करते थे। आयुर्वेद पूरी तरह से जड़ी—बूटियाँ और प्राकृतिक वनस्पति से बनी दवाओं का एक विशिष्ट रूप है। आयुर्वेद का उल्लेख रामायण में भी किया गया है। आज जब दवाओं की पश्चिमी संकल्पना जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है तब ऐसे बहुत से लोग हैं जो बहु प्रकार की विशेषताओं के लिए आयुर्वेद की इस वैकल्पिक विधि की तलाश में हैं।

हम भारतीय संस्कृति की बात करें और कला के पक्ष को अनछुआ रहने दे तो बात अधूरी सी रह जाती है। जैसा कि हम सभी भलि—भाँति जानते हैं कि कला के विभिन्न रूप हैं, रंगमंच—कला, साहित्य कला, संगीत कला, नृत्य कला, शिल्प कला, चित्रकला इत्यादि अन्न्य रूप, असंख्य रूप। सबसे पहले हम चित्रकला को ही लें। पाषाण काल में भाषा के अभाव में मानव ने पथरों पर चित्रों को उकेर कर अपने भावों को अभिव्यक्त किया था। अजंता और एलोरा ई—पूर्व शताब्दी की चित्रकला का सर्वोत्तम उदाहरण है। ऐसी ही शिल्पकला है। कोर्णक का सूर्य मंदिर, नालंदा विश्वविद्यालय, राजा—महाराजाओं के पुराने किले ऐसे असंख्य

शिल्पकला के उदाहरण हैं जिनमें भारतीय संस्कृति परिलक्षित होती है। ऐसे ही हम नृत्य कला को ही लेकर चलें तब पाएंगे कि नृत्य कला के भी भारतीय संस्कृति में अनेक रूप हैं। सांस्कृतिक नृत्य जैसे शास्त्रीय नृत्य जिनमें भरत नाट्यम, कथक, कथकली, कुच्चीपुड़ी इत्यादि शामिल हैं। इसी प्रकार यहां के लोक नृत्य जैसे पंजाब का भांगड़ा, गुजरात का गरबा, राजस्थान का घूमर, असम का बिहू और महाराष्ट्र का लावणी नृत्य इत्यादि भारतीय संस्कृति की छवि लिए हुए हैं। ऐसे ही संगीत, कला भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जा सकती है। भारतीय संस्कृति में संगीत के दो प्रकार प्रचलित हैं पहला कर्नाटक संगीत, जो दक्षिण भारतीय राज्यों में प्रचलित है और दूसरा हिन्दुस्तानी संगीत जो शेष भारत में प्रचलित है। भारतीय संगीत में लोक संगीत बहु प्रचलित है। हमारे हर तीज—त्यौहार हर अवसर हर रस्मों में लोक गीत—संगीत का अपना विशेष स्थान है। बच्चे के जन्म से लेकर उसके विवाह संस्कार तक के लोक गीत—संगीत भारतीय संस्कृति के रंगों को अपने में समेटे हुए हैं।

भारतीय संगीत और नृत्य के साथ—साथ भारतीय रंगमंच कला का अपना वृहद इतिहास है। कला के इस रूप में महाकवि कालीदास के नाटक शाकुन्तलम एवं मेघदूत और भास के नाटक स्वपनवासवादत्तम, मध्यम व्यायोग आदि प्रसिद्ध नाटक हैं।

लोक रंगमंच की परंपरा भारत के अधिकांश भाषाई क्षेत्रों में लोकप्रिय है। इसके अलावा भारत के गांवों में कठपुतली रंगमंच कला की समृद्ध परंपरा है।

लगभग 2000 वर्ष पुरानी केरल की कुटियट्टम विश्व की सबसे पुरानी जीवंत रंगमंच परम्पराओं में से एक है। युनेस्को ने इसे ‘वैश्विक पुरातन कला’ के रूप में स्वीकार किया है।

भारत की कलाएं और हस्तशिल्प इसकी सांस्कृतिक और परम्परागत प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करने का माध्यम बने रहे हैं। देश भर में फैले इसके सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की अपनी विशेष सांस्कृतिक और पारम्परिक पहचान है जो वहाँ प्रचलित कला के भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देती है। भारत के हर प्रदेश में कला की अपनी एक विशेष शैली है और पद्धति है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में 'एक राष्ट्र की संस्कृति उसके वासियों के हृदय और आत्मा में विराजती है' यह कथ्य निश्चित ही हमें यह आभास कराता है कि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति मात्र औपचारिक चीजों में न रहकर वहाँ के लोगों के मनोभावों और विचारों में झलकती है। भारतीय संस्कृति का प्रभामंडल इतना विशाल और विस्तृत है कि यदि कोई शोधकर्ता अपनी यात्रा प्रथम छोर से आरंभ करे तो वह इसके अंतिम छोर को पाने तक स्वयं को इसमें विलीन कर चुका होगा। भारतीय संस्कृति की झलक हम यहाँ की शिक्षा-दीक्षा में देख सकते हैं, यहाँ के बहुरंगी खान-पान में देख सकते हैं, यहाँ के अतरंगी रहन-सहन में देख सकते हैं। भूगोलिक परिधि के अंदर होते हुए भी यहाँ प्रत्येक राज्य की अपनी एक पृथक संस्कृति निश्चित रूप से आपको आकृष्ट करेगी।

यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि हमारी भारतीय संस्कृति से सार्वभौमिक सहिष्णुता का विचार पूरे विश्व में संप्रेषित हुआ। भले ही हम अपने देश में कई धर्मों की मान्यताओं के अस्तित्व को मानते हैं परन्तु हम इस बात पर भी विश्वास रखते हैं कि सभी धर्मों की नींव शांति, भाईचारे और प्रेम की मार्मिक भावनाओं पर रखी गई है। विभिन्न धार्मिक विचारों को मानने वाले भले ही अलग-अलग हों परन्तु उनका पालन करने का प्रमुख लक्ष्य, एक ही सार्वभौम शक्ति है। भारत देश एक ऐसा देश है जिसकी संस्कृति ने न केवल अपने उन धर्मों को



संचित किया जो कि यहाँ से मूल रूप से उपजे हैं बल्कि हमारी उदार संस्कृति ने बाहर से आए धर्मों को भी अपने में स्थान दिया। इसका बहुत बड़ा उदाहरण पारसी धर्म है।

ऐसा नहीं है कि भारत में लोग आधुनिकता का अनुसरण नहीं करते। यहाँ के लोग आधुनिकता का अनुसरण करते हुए सांस्कृतिक मूल्यों और परम्परा से जुड़े हुए हैं। संस्कृति सौम्यता से आपसी व्यवहार करने का, मूल्यों के प्रति हमारी समझ का, न्याय, सिद्धान्त और मान्यताओं को अपनाने का व्यवहार कहा जा सकता है। पुरानी पीढ़ी के लोग विरासत में मिली हमारी सांस्कृतिक धरोहर को नई पीढ़ी को सौंपते हैं। भारतीय योग, ध्यान और आध्यात्मिक में विश्वास करते हैं। आज पूरा विश्व भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग 'योग' को मानता है और विश्वास करता है। विश्व भर में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है।

ध्यान और अध्यात्म भारतीय संस्कृति के द्योतक हैं। ध्यान लगाना योग का सबसे महत्वपूर्ण घटक है जो व्यायामों की एक श्रृंखला सहित मन और शरीर का उपचार है। तनाव से निजात पाने के लिए विश्व भर में आज लोग योग एवं ध्यान का आश्रय ले रहे हैं।

“बसुधैव कुटुम्बकम्” और अतिथि देवो भवः का कथन भारतीय संस्कृति का द्योतक है। यह हमारी भारतीय संस्कृति ही है कि हम अपने मेहमानों का स्वागत प्रसन्नता से करते हैं, हमारी संस्कृति में अतिथि को भगवान का रूप दिया गया है।

हमारी संस्कृति में बड़ों के मान-सम्मान को विविध रूपों में दर्शाया गया है। जहाँ हमारी संस्कृति में मातृ-पितृ भवित का सर्वोत्तम उदाहरण श्रवण कुमार हैं वहीं एकलव्य के बलिदान ने गुरु-शिष्य परम्परा को शिखर तक पहुँचाया है। श्रीराम जैसा पुत्र इस देश की अप्रतिम धरोहर हैं तो श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया श्रीमद् भगवद् का

उपदेश सारी मानव जाति के लिए हर युग में प्रेरणा का स्त्रोत रहेगा। भारतीय संस्कृति का सम्मान पूरे विश्व में है और हमें अपने भारतीय होने पर गर्व होना चाहिए। हमारी परंपरा हमारी संस्कृति ही हमारी अमूल्य धरोहर है। भारतीय संस्कृति का आभामंडल इतना विस्तृत, इतना विशाल है कि इसकी आलोकिक समृद्धता को मात्र कुछ पन्नों में समेटना संभव नहीं है। अंततः

“बसुधैव कुटुम्बकम्” और अतिथि देवो भवः
जैसे हैं इसमें आदर्श कथन
ऐसी भारतीय संस्कृति को
करते हैं हम शत-शत नमन।



शुभकामनाएं



1. श्री अनिल श्रीवास्तव दिनांक 1 अक्टूबर, 1992 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 30 नवंबर, 2019 को पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



2. श्री जगदीश चन्द्र वैला दिनांक 13 दिसंबर, 1985 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 मार्च, 2020 को कार्यवाहक सह रसोइया के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



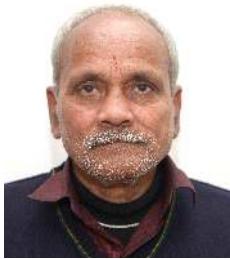
3. श्री अनिल पुरी दिनांक 1 जून, 1987 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 30 नवंबर, 2020 को सह-रजिस्ट्रार के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



4. श्रीमती हेमा सिंह दिनांक 1 अप्रैल, 2003 को रानावि में नियुक्त हुई। वे दिनांक 31 दिसंबर, 2020 को सह-प्राध्यापक के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुई। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



5. श्री ओम प्रकाश दिनांक 15 जून, 1988 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 दिसंबर, 2020 को तबलावादक ग्रेड-1 के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



6. श्री योगेश कुमार दिनांक 1 जनवरी, 1980 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 दिसंबर, 2020 को गेस्टेटनर ऑपरेटर के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



7. श्री लल्लन प्रसाद दिनांक 1 अगस्त, 1990 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 दिसंबर, 2020 को एम.टी.एस. के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



8. श्री अमरजीत शर्मा दिनांक 30 जून, 1979 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 जनवरी, 2021 को सह-प्राध्यापक के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



9. श्री भरत सिंह नेगी दिनांक 8 दिसंबर, 1981 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 जनवरी, 2021 को सहायक वार्डरॉब सुपरवाइजर के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



10. श्री सुरेश शर्मा दिनांक 26 अगस्त, 1999 में रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 जुलाई, 2021 को प्रभारी निदेशक के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।



11. श्री एस. मनोहरन दिनांक 10 अप्रैल, 1992 को रानावि में नियुक्त हुए। वे दिनांक 31 जुलाई, 2021 को ध्वनि तकनीशियन के पद पर रहते हुए विद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनके उज्जवल भविष्य के लिए रानावि परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

राजभाषा गतिविधियाँ



- राजभाषा हिन्दी के कार्यों एवं इसके अनुपालन का सुनिश्चित करने के लिए दिनांक 30 जून, 2020 को राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया। बैठक की अध्यक्षता निदेशक प्रभारी, श्री सुरेश शर्मा ने की। बैठक में संस्कृति मंत्रालय से उपस्थित निदेशक (रा.भा.) श्री वेद प्रकाश गौड़ ने राजभाषा कार्यों के साथ राजभाषा विभाग द्वारा प्रकाशित की जाने वाली हिन्दी की गृह पत्रिका 'राजभाषा मंजूषा' की बेहद सराहना की।
- जुलाई माह में राजभाषा विभाग द्वारा 'वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की भूमिका' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में वक्ता के रूप में संस्कृति मंत्रालय से निदेशक (रा.भा.) श्री वेद प्रकाश गौड़ और सुश्री करमा देवी स्मृति, पी. जी. कॉलेज के प्राचार्य एवं जाने-माने वक्ता एवं लेखक, डॉ. मुकेश मिश्रा को आमंत्रित किया गया। दोनों वक्ताओं ने वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की भूमिका विषय पर बहुत रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक जानकारी दी। सभी प्रतिभागियों ने संगोष्ठी में उत्साहपूर्ण भाग लिया और इस महत्वपूर्ण विषय से लाभान्वित हुए।
- सितंबर, 2020 माह में दिनांक 1–30 सितंबर, 2020 तक हिन्दी उत्सव का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न प्रतियोगिताएं कोविड-19 के प्रकोप को ध्यान में रखते हुए ऑनलाइन माध्यम से आयोजित की गई। इसके अतिरिक्त रानावि, नई दिलीप के साथ-साथ रानावि के वाराणसी केन्द्र, गंगटोक (सिक्किम), अगरतला (त्रिपुरा) एवं बैंगलूर (कर्नाटक) में कार्यरत हिन्दी तर भाषी स्टाफ के मध्य हिन्दी के प्रति रुझान लाने एवं साथ ही इसकी अभिवृद्धि के लिए दिनांक 23.09.2020 को शुद्ध हिन्दी वार्तालाप एवं दिनांक 24.09.2020 को भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई। इन प्रतियोगिताओं में कार्यालय के अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्यालयों के कर्मचारियों ने उत्साहिपूर्ण

भाग लिया। हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में रोचक प्रतियोगिताओं के माध्यम से हिन्दी भाषा के प्रति रुझान बढ़ाने का राजभाषा विभाग का यह पहला कदम अत्यंमत सफल रहा।

- राजभाषा विभाग द्वारा अक्टूबर, 2020 माह में दिनांक 23.10.2020 को राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का ऑनलाइन आयोजन किया गया। बैठक में राजभाषा कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने संबंधी अहम पहलुओं पर चर्चा की गई।
- राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा रानावि की गृह-पत्रिका राजभाषा मंजूषा के 21वें एवं 22वें अंक को राजभाषा कीर्ति पुरस्कार के अंतर्गत प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। यह महामहिम राष्ट्रपति के कर कमलों द्वारा दिया जाने वाला गृह पत्रिकाओं के लिए सर्वोच्चम राष्ट्रीय पुरस्कार है। यह पुरस्कार सितंबर, 2021 माह में हिन्दी दिवस के अवसर पर दिया जायेगा। राजभाषा विभाग इस सर्वोच्च उपलब्धि के लिए बधाई का पात्र है।
- राजभाषा विभाग द्वारा 23 दिसंबर, 2020 को राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक का आयोजन ऑनलाइन माध्यम से किया गया। इस बैठक में संस्कृति मंत्रालय से राजभाषा विभाग के निदेशक (रा.भा.) डॉ. आर. रमेश आर्य की आमंत्रित किया गया। बैठक में डॉ. आर्य ने राजभाषा विभाग द्वारा रानावि में हिन्दी कार्यान्वयन को सुनिश्चित किए जाने वाले कार्यों की सराहना की।



- राजभाषा विभाग द्वारा दिनांक 18 दिसंबर, 2020 को राजभाषा नीति नियम एवं अधिनियम विषय पर ऑनलाइन माध्यम से कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस बैठक में संस्कृति मंत्रालय से डॉ. आर. रमेश आर्य को विशेषज्ञ के रूप में आयोजित किया गया। डॉ. आर्य ने राजभाषा नीति नियम एवं अधिनियम विषय पर प्रतिभागियों को महत्वपूर्ण जानकारी दी।

चित्र बोलते हैं प्रतियोगिता

विद्यालय के राजभाषा विभाग द्वारा कोविड-19 के प्रकोप के कारण हुए लॉकडाउन के दौरान ऑनलाइन माध्यम से चित्र बोलते हैं प्रतियोगिता आयोजित की गई। इस अवधि के दौरान प्रतिभागियों से द्वारा बनाए गए / खींची गई तस्वीरों को पत्रिका में संकलित किया गया है।



फोटो : श्री प्रदीप कुमार सोहंती



आरेख : सुश्री चेतना वशिष्ठ



आरेख : श्री अरुण कुमार मलिक



आरेख : सुश्री नंदिता



आरेख : सुश्री चेतना वशिष्ठ

प्रशासनिक शब्दावलियां

A brief note is placed below	संक्षिप्तव नोट नीचे रखा है
Acting in official capacity	पद की हैसियत से कार्य करते हुए
Administrative action	प्रशासनिक कार्यवाही
As amended	यथा संशोधित
As of right	साधिकार
As per opinion of	के मतानुसार
Beyond reasonable doubt	उचित संदेह से परे
Boarding and lodging	आवास और भोजन
Continue in office	पद पर बने रहना
Demi-official (D.O.)	अर्ध शासकीय, अर्ध—सरकारी (अ.स.)
Discretionary power	विवेकाधिकार
Duly complied	विधिवत पालन किया गया
Follow up action	अनुवर्ती कार्यवाही
For remarks	अम्युक्ति के लिए
From pre & page	पिछले पृष्ठ से
I am desired to say	मुझे निवेदन करने के लिए कहा गया है
I beg to submit	निवेदन है कि
In compliance with	का पालन करते हुए, के अनुपालन में
Informed of	से अवगत
In matter of	के विषय में
In pursuance of	के अनुसरण में, के अनुसार
Inspection at site	मौके पर निरीक्षण
In the prescribed manner	विहित रीति से, निर्धारित ढंग से, निर्धारित रीति से
In this instance	इस मामले में
In words and figures	शब्दों और अंकों में
Leave to appeal	अपील के लिए अनुमति
Line of action	कार्यवाही की दिशा
Matter of fact	तथ्य की बात, तथ्यतः
May be regretted	खेद प्रकट किया जाए
No admission	प्रवेश—निषेध, अंदर जाना मना है
Not traceable	पता नहीं लग रहा है
Notwithstanding	के होने पर भी, के होते हुए भी
On grounds of	के आधार पर
On or about	को या उसके आसपास
On temporary basis	अस्थायी आधार पर
On the job training	अंतःकार्य प्रशिक्षण
Orders are solicited	कृपया आदेश दें
Out of order	खराब, अव्यवस्थित
Out of stock	स्टॉक में नहीं
Please put up with previous papers	कृपया इसे पिछले कागज—पत्रों के साथ प्रस्तुत करें
Pros and cons	पक्ष—विपक्ष, आगा—पीछा
Question of propriety	औचित्य का प्रश्न
Quoted below	नीचे उद्धृत
Referred to above	उपरिनिर्दिष्ट
Required to be ratified	अनुसमर्थन अपेक्षित है
Secret instructions issued	गुप्त अनुदेश जारी किए गए हैं
Seen and returned	देखकर वापिस किया जाता है
Strike off the name	नाम काट देना, नाम निकाल देना
Subject to the condition that	इस शर्त पर कि
Take cover charge	कार्यभार ग्रहण करना



आजादी का
अमृत महोत्सव

